मनोहर सीरीज न० ५

उदय-अस्त

(श्रेष्ठ कहानियाँ)

सम्पादक—

सैयद महमूद अहमद 'हुनर'

मूल्य बारह आना

प्रकाशक—क्षितीन्द्रमोहन मित्र,
माया कार्यालय,
इलाहाबाद।

मुद्रक—धीरेन्द्रनाथ,
माया प्रेस,
इलाहाबाद।

उदय-अस्त

टीलों पर चाँदनी छिटकी हुई थी और दूर खजूरों के एक झुण्ड में कोई पक्षी सहमी-सहमी तानें उड़ा रहा था। मैं इस जंगल में शिकार खेलने आया था। मेरा बूढ़ा नौकर सो गया था, और चूँकि परदेश में मुझे नींद बहुत कम आती है, और जंगलों की चाँदनी रातें सोने के लिये नहीं, बल्कि जागने के लिये होती हैं, इसलिये पहले तो मैं बिस्तर पर पड़ा करवटें बदलता रहा, मगर जब खजूरों के झुण्ड में किसी बेनाम के पक्षी की दुखी-दुखी, सहमी-सहमी तानें सुनीं, और फिर इन तानों को मैंने वायु मण्डल के अथाह नीले, खिले आकाश में किसी भागती हुई भयभीत युवती के घूँघरवाले बालों वाला रूप धारण कर लहराता देखा, तो मैं उठ खड़ा हुआ। मेरे कुत्ते दुम हिलाने लगे, और सुनहली रेत उनकी दुमों की हरकत पर उड़ने लगी। एक ऊँचे टीले पर चढ़ कर मैंने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। इक्के-दुक्के खजूरों की प्रेतों-जैसी छाया, और सायँ सायँ करती हुई निस्तब्धता के अतिरिक्त एकान्त के इस महाद्वीप में और कोई चीज़ मौजूद न थी। मैं ठण्डी रेत को मुट्ठियों में दबा कर उसे धीरे धीरे नीचे गिराने लगा। रेत के नन्हें-नन्हें टीले से उभर आये और मैं सोचने लगा—'अगर ईश्वर ने पृथ्वी का इतना लम्बा चौड़ा टुकड़ा रेत और सिर्फ़ रेत के लिये दान कर दिया है, तो आख़िर इसका मतलब? ऐसा क्यों न हुआ कि यहाँ हरे-भरे और फूले फले खेत होते? गेहूँ की सुनहरी बालें वायु के झोंकों के कारण उपेक्षा से अपनी गरदनें नीची कर देतीं, और समस्त दृश्य रहटों का 'रीं-रां' और 'सोतों' के दबे दबे गीतों से परिपूर्ण हो जाता। या ऐसा क्यों न हुआ कि यहाँ ऊँचे ऊँचे पर्वत होते, जिन पर ऊँचे सनोवर के जंगल होते? छोटी-छोटी नदियाँ चट्टानों से टकरातीं, झाग के बादल उड़ातीं, घायल नागिनों की भाँति लहराती फिरतीं, और ढलानों पर अल्हड़ ढोर चराने वालियाँ पतली-पतली उँगुलियों में मोटी-मोटी बंसियाँ थामे गुलाबी ओंठों के ज़रा से स्पर्श से वायु मण्डल में संगीत का रस घोलती होतीं। या ऐसा क्यों न हुआ कि यहाँ बड़े बड़े नगर 'मेरी कल्पना की उड़ान अचानक रुक गई और चाँदनी के रुपहले अँधेरे में मुझे ऊँटों की घंटियों की धीमी धीमी आवाज़ें सुनाई दीं। निस्तब्धता के इस सागर पर इन सुरीले स्वरों की नौका तैरती हुई आई, और

और उषा की भाँति नारंगी हैं, तेरा समस्त शरीर कुमार युवकों की स्वप्न मूर्त्तियों से मिलता जुलता है, लेकिन मैं तेरे वश में नहीं आ सकता, क्योंकि मैं तुमसे कहीं अच्छी प्रेमिका के साथ जा रहा हूँ !"

एक जगह पर जा कर मैंने कुत्तों को रोक लिया और उन्हें दुत्कार कर खेमे की ओर भगा दिया। सब ऊँट मेरे सामने से जा रहे थे। कजावों पर बुन्दों की चमक बढ़ गई थी और ऊँटों की घंटियाँ सैकड़ों जल तरंगों की भाँति बज रही थीं। मुझे भी इसी मार्ग के किसी गाँव तक पहुँचने की इच्छा थी। शिकार की धुन में सन्ध्या हो गई था और रात भर किसी गाँव की खोज में टीलों पर भटकते फिरने के बजाय मैंने वहीं खेमा तान लेना अच्छा समझा था। अतएव मैंने आवाज़ दी—"भाई, किस गाँव जायगा यह क़ाफ़िला ?"

चन्द सारवानों ने मुड़ कर मेरी ओर देखा और सब एक साथ बोले—"सोसन।"

मैं भाग कर एक सारवान के पास गया और कहा—"भाई, मुझे भी सोसन ही जाना है। शिकार खेलने आया था, रात हो गई। रास्ता मालूम न था। तुम अगर मेरे लिये कुछ देर ठहर सको, तो मैं सब सामान ले कर तुम्हारे साथ चला चलूँ। कल दिन को मैं किससे रास्ता पूछता फिरूँगा ?"

सारवान, जिसने मुँडासे से सिर छिपा रक्खा था, बोला—"हर्ज तो कुछ नहीं, लेकिन " और उसने कुछ देर सोच कर ज़ोर से पुकारा—"गुलाब खाँ! यह एक मुसाफ़िर है बेचारा। कहता है, मुझे भी सोसन ले चलो। कहो तो चन्द घड़ी यहीं दम ले लें।"

और क़ाफ़िले के अगले सिरे से आवाज़ आई—"कौन है यह मुसाफ़िर ?"

सारवान ने जवाब दिया—"कोई शिकारी है।"

उधर से गुलाब खाँ ने कहा—"ठहर जायँगे। तुम उससे कहो, ज़रा जल्दी करे। पहिले ही बहुत देर हो चुकी है। बारात को पौ फटने से पहिले पहुँच जाना चाहिये—तारों की छाँव में ही !"

क़ाफ़िला रुक गया। घंटियों के स्वर मद्धिम पड़ गये, कजावों पर चहचहे-से सुनाई देने लगे और मैं अपने खेमे की ओर भागा। मेरा नौकर खेमे से बाहर मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। बोला—"आप किधर निकल गये थे ? रात में इन रेगिस्तानों में भूत प्रेत खेला करते हैं। आपको तो अपनी जान की कुछ परवाह नहीं।"

कुछ डरे पैरों से जो न जाना और मैं नौकर का पाठ पढ़ाता हुआ बोला—"घबराओ नहीं, ये क़ाफ़िलेवाले यहीं के एक गाँव से सामान में आ रहे हैं। लेना अपनी बन्दूक सँभालो और चलो मेरे साथ। भूत प्रेत का किस्सा छोड़ो यह सब वहम है।"

अब मेरा नौकर ठेठ से ठेके का उत्साहक हुआ कहने लगा—"वहम नहीं सरकार! सारी दुनिया जानती है कि इन टीलों में बहुत से शिकारी आये और गायब हो कर लौटे। अभी हाल की बात है कि नवाब दीवान खाँ का नौजवान बेटा इधर शिकार खेलने आया और जब वापस गया, तो खोया-खोया। हकीमों से पूछा गया, तो उन्होंने बताया कि यह कोई रोग नहीं है, भूत प्रेत का प्रभाव जान पड़ता है। एक अँधेरी रात को वह घर से निकल भागा। उस दिन भयंकर आँधी आई और वह उसमें ऐसा खोया कि फिर लौट कर न आया। आप तो मेरी हर बात की हँसी उड़ाते हैं।"

इन्हीं बातों में लेना छेड़ दिया गया और हम क़ाफ़िले की तरफ़ बढ़े। टीले के पास में कुछ ऊँट बैठे सुस्ता रहे थे। कुछ गर्दन मोड़े हमारी ओर देख रहे थे और कुछ चुपचाप खड़े मानो कजावों में बैठी युवतियों की बातें सुन रहे थे।

मुँडासे वाला युवक मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। मेरे पहुँचते ही उसने गुलाब खाँ को कूच करने को कहा और यह क़ाफ़िला धीरे धीरे टीलों के बीच रेंगने लगा।

"कहाँ से आ रहे हैं आप लोग?" मैंने अपने साथी से पूछा।

"समन से।" उसने जवाब दिया।

"तुम ने अपने गाँवों के लिये फूलों के-से नाम क्यों चुन रखे हैं? समन! सोसन! बहुत प्यारे नाम हैं ये!"

और वह बोला—"यहाँ फूल नहीं मिलते न, इसलिये!"

मेरा नौकर भारी गन को एक कन्धे पर से दूसरे कन्धे पर बदलते हुये बोला—"यहाँ फूल नहीं मिलते इसलिये! क्या मतलब?"

और सारबान अपनी आँखों पर से मुँडासा उठाते हुये बोला—"तुम शहरों में रहने वाले अपने बागों में नन्हीं नन्हीं नक़ली पहाड़ियाँ और छोटे छोटे रेत के टीले बना लेते हो, इसलिये कि वहाँ पहाड़ और रेगिस्तान नहीं हैं। हम रेगिस्तानवाले अपने गाँव को फूलों का नाम इसलिये देते हैं कि यहाँ फूल नहीं मिलते। बात एक ही है। जो वस्तु प्राप्त न हो सके, उसका नाम लेने से ही

मन को संतोष हो जाता है। हम समन से आ रहे हैं, हम सोसन आ रहे हैं। क्या तुम्हें इन नामों में कोई रस नहीं मिलता ?"

और मैं हँसते हुये बोला—"कुत्तों के पालने वाले को फूलों से क्या लगाव—उल्लू क्या जाने कि दिन का प्रकाश क्या चीज़ है ! भैंस को क्या पता ''

और बूढ़ा मेरी बात काटते हुये बोला—"आप को तो मेरी हँसी उड़ाने में मज़ा आता है। अभी तो आप ने मुझे उल्लू और भैंस बनाया है। अब अगर मैं आप को न टोकता, तो ख़ुदा जाने, आप मेरे लिये किन किन नामों का प्रयोग करते ?"

"चलचकर !" मैं बोला और सारबान और मैंने ज़ोर ज़ोर से ठहाके लगाये और जब हमारे ठहाके ख़त्म हुये, तो मैंने कजावे पर दबी-दबी हँसी सुना। निगाह पलट कर मैंने ऊपर देखा और नये वस्त्रों को बेचैनी से अपने इर्द गिर्द लपेटती हुई युवतियाँ सिमट गईं। मेरे मस्तिष्क में हलकी हलकी हवा-सी चलने लगी, जिससे मेरे अनुभव के अंकुर फूट गये और देर तक मेरे स्वप्नों के फूल अपनी पंखुड़ियाँ फड़फड़ाते रहे और जब मुझे शान्ति-सी मालूम हुई, तो मेरा नौकर और सारबान भूत प्रेतों की बातें कर रहे थे।

"भूत तो ख़ैर भूत हुये," मेरा नौकर कह रहा था—"लेकिन इस प्रेत का क्या मतलब ?"

सारबान बोला—"प्रेत परियों को कहते हैं न ?"

"और परियाँ क्या चीज़ होती हैं ?" मेरे नौकर ने पूछा।

"परियाँ ?"

"हाँ, परियाँ—और यह खेमा तो ऊपर किसी कजावे में अटका दो।"

सारबान ने हँसते हुये खेमा उसके कन्धों से उठाया और ऊपर कजावे की ओर उठाते हुए बोला—"ले मरगिल, तू अपने आगे रख ले या ऊपर नरतरन को दे दे।"

मेरा नौकर एक दीर्घ नि श्वास लेते हुये बोला—"हाँ, तो क्या होती हैं परियाँ ?"

"परियाँ ?" सारबान सोचने लगा—"परियाँ सुन्दर लड़कियाँ होती हैं। उनके सुनहरे पर होते हैं, वे वायु में तैरती रहती हैं, और जब उनका साया, किसी पर पड़ जाय, तो वह अपने हवास खो बैठता है।"

और मैं अनायास ही कजावे की छाया से हट कर एक ओर हो गया। सुन्दर लड़कियाँ—सुनहरे बालों वाली, आहू-भर आँखों वाली। और अचानक यह विचार मेरे हृदय में चुभने लगा कि कहीं मैं भूत प्रेत के वश में तो नहीं आ गया। यह पीली, सनसनाती हुई चाँदनी, यह घण्टियों की स्वप्निल टन टन, ये लम्बे-लम्बे डग भरते हुये ऊँट, ये वायु में तैरती हुई परियाँ, यह समन से आने वाला और सासन को जाने वाला क़ाफ़िला—यह अजीब दुनिया है! मैं घबरा-सा गया। लेकिन अचानक मेरे सहयात्री सारवान ने कानों पर हाथ रक्खा और गीत गा कर मुझे फिर उन्हीं रेतीले मैदानों में ले आया।

"हे खजूर की डालों पर फुदकती हुई ममोलम! उड़ जा, और अपने ममोले का किसी और खजूर पर प्रतीक्षा कर, क्योंकि इस खजूर के तले आज मेरी प्रेमिका आयगी।

"हे खजूरों का डालियो! धीरे धीरे झूलो, और अपने सूखे हुये पत्तों को खड़खड़ाओ नहीं, क्योंकि आज यहाँ मेरा प्रेमिका आयगी।

"हे तेज़ वायु के झोंको! इन डालियों से लिपट लिपट कर सरसराओ नहीं, और इस वृद्ध तने में घुस कर सीटियाँ न बजाओ, क्योंकि आज यहाँ मेरी प्रेमिका आयगी।

"हे तारागण! प्रकाश के फौवारे बरसाओ और हे तितलियो, अपने परों की एक सेज बिछाओ, क्योंकि यहाँ आज मेरा प्रेमिका आयगी।"

'किसका गीत है यह?' मैंने पूछा।

"मेरा अपना!" वह बोला।

'अच्छा! तो तुम गीत भी बना लेते हो?" मैंने पूछा।

"जी हाँ!' वह बोला—"जब चाँदनी रातों में एक नवयुवक अकेला ऊँट की नकेल थामे विस्तृत मैदान में किसी दूर स्थान को जा रहा हो, तो वह गीत बनाने पर मजबूर हो जाता है।"

"ठीक है।' मैंने कहा—' लेकिन गीत बनाने वालों को एक और चीज़ भी चाहिये।"

"वह क्या?" उसने पूछा, और फिर अचानक मेरा हाथ पकड़ कर धीरे से बोला—'देखिये, कजावों पर कुमारी लड़कियाँ बैठी हैं!"

और यह विषय यहीं समाप्त हो गया।

"किसकी बारात है?" मेरे नौकर ने पूछा।

और सारवान ने उत्तर दिया—"समन के सफ़ेदपोश के बेटे की। हम सोसन के एक बहुत ग़रीब घराने में जा रहे हैं।"

"यह क्यों ?" मेरे नौकर ने पूछा।

और सारवान ने मेरा हाथ दबाते हुये कहा—"भूत प्रेत का असर है।"

और ऊपर कजावों में नये पद्य सरसराये और जब हम सोसन के निकट पहुँचे, तो दूर हमें बहुत सी आवाज़ें दिखाई दीं। इधर से गाले छूटने लगे। बारात के अगले सिरे पर ढोल और शहनाइयाँ बजने लगीं। ऊँटों की गरदनों और घुटनों के साथ घुंघरुओं के हार बाँध दिये गये और विभिन्न सुरीली आवाज़ों से मैदान में एक कोलाहल मच गया। सारवान ने मुझसे पूछा—"आप रात कहाँ बितायेंगे ?"

और मैंने जवाब दिया—"मेरी यहाँ कोई जान पहिचान तो है नहीं। मैं तो गाँव इसलिये आया हूँ कि यहाँ खाने पीने की चीज़ें आसानी से मिल जायँगी। यहीं बाहर किसी खेत के किनारे खेमा तान लूँगा।"

वह मेरा हाथ पकड़ते हुये बोला—"क्या ज़रूरत है ख़ेमा खड़ा करने की ? मेरे यहाँ पड़ रहियेगा। हम सब तो नाचने में लग जायँगे और फिर आप भी मुसाफ़िर, हम भी मुसाफ़िर, सब मुसाफ़िर भाई भाई होते हैं।"

"बहुत अच्छा।" मैंने कहा। शायद मैं इन्कार कर देता, लेकिन वह कवि था और कवियों के विषय में मैंने जो-कुछ किताबों में पढ़ा है, उससे यही निष्कर्ष निकाला है कि वे बहुत सरल और बहुत सहृदय होते हैं।

यद्यपि उस रात मुझे नींद न आई, लेकिन मुझे एक सादा-सा बिस्तर मिल गया और शहनाइयों, ढोलों और बाजों-ताशों की गूँज में मैं सोचता रहा कि सभ्य समाज से दूर रहने वाले इन अपढ़ सारवानों को आतिथ्य-सत्कार किसने सिखा दिया ? मुझे अच्छी याद है कि जब मैं पहिली बार देहली गया और वहाँ चाँदनी चौक में एक महाशय से काश्मीरी दरवाज़े का रास्ता पूछा, तो वह नाक भौं चढ़ा कर बोले— 'इधर चले जाइये, और फिर इधर मुड़ कर सीधे चले जाइयेगा !' —और जब मैंने उधर देखा, तो एक ऊँची विशाल इमारत खड़ी थी, उधर एक छापाख़ाना था और सामने नाक की सीध में वही ट्रामों की खड़खड़ाहटों से पूर्ण चाँदनी चौक !

समन का रहने वाला यह नवयुवक कितने प्रिय व्यक्तित्व का मालिक है और कितना अच्छा गाता है ! और इसके गानों में कितना रस और कितना माधुर्य है। और वह कजावों में बैठी हुई स्त्रियाँ, जिन्होंने बारात

के अचानक रुक जाने को ज़रा भी बुरा न माना—और क़ाफ़िले का सरदार गुलाब खाँ, जिसने एक अपरिचित के लिये वीरान जंगल में क़ाफ़िले का क़ाफ़िला रोक लिया और फिर ये खुले मैदान और इन उभरे हुये टालों पर छिटकी हुई चाँदनी—यह चालिस पचास घरों वाला नन्हा-सा गाँव—यह ढोल और यह शहनाइयाँ—यह ख़ालिस सहर का विस्तार और यह भोंडा लालटेनें—कितना स्वतंत्र है यह संसार और कितना पवित्र है इसका वातावरण ! सोचते-सोचते मैं अपने बिस्तर से उठा और दरवाज़े पर खड़े हो कर मैंने सामने दृष्टि दौड़ाई। लम्बी लम्बी लपटें उछालती और धुआँ उड़ाती हुई मशालों के इर्द गिर्द नौजवान किसान घूम रहे थे और पास ही एक घर से कुमारियों के मिल कर गाने की आवाजें आ रही थीं। मैं धीरे धीरे क़दम उठाता मजमे के निकट पहुँचा।

ताल सुर से अज्ञात और उतार चढ़ाव से बेपरवा टीन की भाँति बजती हुई पुरानी ढोलक के इर्द गिर्द सब नाच रहे थे। मशालें उन सब के चहरों में आग सी लगा रही थीं और बहुत दूर कच्चे घरौंदों की छतों पर नौजवान लड़कियाँ—और आस पास ऊबड़-खुबड़ मेरियों पर नन्हे बच्चे दम साधे बैठे गीत सुन रहे थे तथा नाच देख रहे थे। चौड़े तलुओं और फटी हुई एड़ियों की बार बार धमक से ढोलक बजाने वाले के इर्द गिर्द एक बवन्डर-सा मँडरा रहा था और फेफड़ों के पूरे ज़ोर से निकले हुए स्वर सुनहरे गुबार में गरजते रुपहले टीलों से टकराते, मानों सृष्टि से लिपटे पड़ते थे।

'थाली में कसेरा धरा है।
पनघट के पानी में तेरा चेहरा काँप रहा है।
मेरी छत तोता बैठा है।
गबरू मुँडेरों की ओट में कुमारियों की ताक में हैं।
भट्टा से धुआँ उठ रहा है।
इस पगडंडी पर किस मुसाफ़िर का घोड़ी ने गर्द-सी उड़ा दी है?
दुल्हिन मायके से आ रही है।
दूल्हा मेंहदी रचे पाँव के लिये गेंदे की कलियाँ एकत्रित कर रहा है।'

—धम धमा-धम, धप धप, धम धमा धम, धपधप ! और पाँव की ताल और गीत की लय में लीन सुनने वाले नवयुवकों की 'हाय हाय' 'वाह वाह'—और ढोलक बजाने वाले की अँगुलियों का फुर्ती के साथ नृत्य—असंख्य मटियाले पैरों की अव्यवस्थित करवटें। ढोलक की अन्तिम धप और फिर ठहाके, हुक्के का गुड़-गुड़, कानाफूसियाँ और नये गीत की तैयारियाँ।

मुझे देख कर मेरा नौजवान सारबान मित्र मेरी ओर लपका और मेरा हाथ थाम कर बोला—"आप अभी तक सोये नहीं, मैं तो समझे बैठा था कि आप कब के आराम कर रहे होंगे। आप दिन भर के थके माँदे हैं, जा कर लेट रहिये। हमारे नाच गाने में क्या धरा है? सुना है, आप के शहरों में लड़कियाँ रेशमी वस्त्र पहिन-पहिन कर नाचती हैं और जब भाँति भाँति के बाजों की गत पर गाती हैं, तो ऐसा लगता है, मानो काँसे के असंख्य कटोरे आपस में टकरा कर झनझना रहे हैं।"

"ठीक है।" मैंने कहा—"लेकिन वह लड़कियाँ लड़कियाँ नहीं होतीं, पुतलियाँ होती हैं, पैसे दो और नचवा लो। अपनी खुशी से नाचने वालियाँ हम जङ्गलों में रहती हैं। वहाँ तो नाच और गाना कौड़ियों के मोल बिकता है।"

नाचते हुये पाँव रुक चुके थे और ढोलक बजाने वाला ढोलक की गाँठें तान रहा था। सब लोग चुपचाप खड़े मेरी ओर घूर रहे थे मानो मैं प्राचीन काल की कथाओं का नायक हूँ और लङ्का द्वीप का परिया और जिन्नों की क़ैद से निकल कर आया हूँ।

मेरे सारबान मित्र ने मुझे मेरे निवास स्थान तक पहुँचा दिया और कहा—"आप आराम करें, मैं सुबह तड़के, आपको जगा दूँगा। सुबह तड़के आप क्या चीज़ पाने के आदी हैं?'

"पतली दाल!" मैंने मुस्कराते हुये जवाब दिया, और वह हँसता हुआ दूर नाचने वालों के जमघट में जा मिला।

मैं बिस्तर पर लेटा था और इस विचित्र आनन्दमय वातावरण के विषय में सोच रहा था कि अपने निकट मुझे चूड़ियों का एक छनाका-सा सुनाई दिया। मैं सिर से पाँव तक चादर में लिपटा पड़ा था, और कल्पना-संसार में विचरण कर रहा था, इसलिये इस छनाके को एक वहम समझ कर करवट बदल ली। लेकिन अचानक मेरे कन्धों को किसी ने छुआ, और साथ ही धीमी सी आवाज़ आई—"सुबुल, ऐ सुबुल, तुम तो कहते थे कि मुझे आज रात नींद ही नहीं आयेगी!"

मेरे काल्पनिक स्वर्ग में सिर्फ़ एक परी की कमी थी, जो अब पूरी हो गई। लेकिन परदेश में एक अपरिचित बालिका को अपने इतने निकट पा कर मैं घबरा-सा गया। चादर मुँह से उतार फेंकी और खाट पर उठते हुये बोला—"नींद तो मुझे भी नहीं आती, लेकिन मैं सुबुल नहीं हूँ, मेरा नाम गज़न फ़र है।'

—और ग़ज़नफ़र, अगर तुम बुरा न मानो, तो मैं नित्य रात को तुम्हारे चरणों में अपने प्रेम के फूल चढ़ा जाया करूँ, क्योंकि तुम मेरे स्वप्नों के देवता हो!" —ये कानाफूसियाँ मुझे अपने कोठे की चहरदीवारी में सरसराती हुई सुनाई देतीं और मैं सोचने लगता कि उन सब लड़कियों में से वह कौन सी लड़की है, जो यों छिप छिप कर मेरे मन में जुगनू चमकाती रहती है और जब जुगनू चिनगारियों का रूप धारण करने लगे, तब मुझे इन टिमटिमाहटों में हलकी हलकी जलन का अनुभव होने लगा, तो मैं घबरा सा गया। क्योंकि मेरी मँगनी हो चुकी थी और कहते हैं कि मेरी भावी पत्नी इतनी सुन्दर है कि मैं अगर उसे देख लूँ, तो कवि बन जाऊँ!

खिड़कियों से डर डर कर और सहम सहम कर झाँकने वाले के कन्धे से अगर महीन स्वर वाली युवती की अँगुली छू जाय, तो नींद कहाँ से आये। मेरी नींद उड़ गई, मेरी थकावट दूर हो गई और जब पौ फटने में एक घंटे के क़रीब बाक़ी रहा, तो मैं बाहर निकल आया। पीला चाँद दूर पश्चिमी क्षितिज के निकट ऊँघ रहा था और मोटे-मोटे तारे सलेटी आकाश पर नाच रहे थे। वायु में ठंडक आ गई थी और गाँव से ढोलक की दबी-दबी थाप की धुन पर लड़कियों के थके-थके गीतों की भनक कभी-कभी मेरे कानों में पड़ जाती थी, जिनमें सिर्फ़ ये शब्द समझ सका—"नदियाँ—झरने—चाँदनी रातें—तारे—प्रेमी—आँखें—बाल—होंठ—!"

'यह कैसी दुनिया है?' मैंने सोचा—'यहाँ के कवियों के मस्तिष्क में झरनों तारों, आँखों और बालों के सिवा और कोई विषय नहीं! क्या यहाँ के लोग मृत्यु के नाम से अपरिचित हैं कि इनके गीतों में जीवन ही के भाव झलकते हैं? क्या यहाँ इस सत्य से कोई परिचित नहीं कि झरने रुक जायँगे, तारे डूब जायँगे, आँखें मुँद जायँगी और बाल झड़ जायँगे—और फिर इस नाचते और गाते हुये समूह से आँख बचा कर इस धुँधले मकान में खिसक आने वाली मनचली लड़की के मन में क्या समाया था कि वह ढुलक की धुन में बिचारे ग़ज़नफ़र की रगों में चिनगारियाँ भर कर धुएँ के गाले की भाँति वायु मण्डल में विलीन हो गई?—ग़ज़नफ़र, जिसने देहली में रंगीन शीशों की आब ले कर कई हवाई महल बनाये और जो इन महीन स्वरों, लम्बे-लम्बे बालों और झुकी झुकी आँखोंवालियों के तनिक स्पर्श के लिये पचीस वर्ष तरसता रहा

गीतों के स्वर थमते गये और मेरे विचार देहली और इस जंगल को

स्मणियों की मूर्त्तियों में लिपटते गये। टीलों की ठण्डी रेत मेरे जूतों में भर गई थी, जिसके कारण मेरे जलते हुये तलवों को बड़ी शान्ति मिल रही थी। प्रातःकाल का तारा पूर्वीय क्षितिज पर किसी साँवली दुलहिन के माथे पर सिन्दूर के टीके की भाँति चमक रहा था और आसपास अकेले बबूलों में टिड्डे चिल्ला रहे थे कि अचानक मुझे अपने निकट ही एक भर्राई हुई कानाफूसी सुनाई दी। मैं घट रेत पर दबक गया। कान लगा कर सुना, तो आवाज़ आई— इसीलिये तो मैं बार-बार तुम से पूछ रहा हूँ कि तुम आज इतनी उदास क्यों हो? ससन से बाहर डरावनी खजूरों में जब हम छिप छिप कर बातें करते थे, तो तुम कितनी प्रसन्न होती थीं! तुम्हारे ओंठों पर पंखड़ियाँ और तुम्हारी आँखों में वह नमी मुझे इन दिनों न दिखाई पड़ी, यद्यपि प्रति क्षण हमें अपने भेद के प्रकट हो जाने का भय था, लेकिन अब यह सोसन का जंगल और यह शुष्क चाँदनी—लोग गाँव में नाच और गा रहे हैं और हम इधर बबूल की ओट में एक दूसरे के निकट—इतने निकट बैठे हैं। नरगिस! तुम्हारे दिल में आज कैसा काँटा खटक रहा है? तुम इतनी चुपचाप क्यों हो, नरगिस?"

और इसके बाद मुझे नरगिस की सिसकती हुई आवाज़ सुनाई दी— 'मुझे तो यह मनहूस मैदान जैसे निगल लेगा। मैं तो घबरा गई हूँ सुहेल, मैं सोसन में घबरा गई हूँ, मुझे आज बुख़ार चढ़ रहा है।"

और इसके बाद बहुत सी उलझी हुई और निराशापूर्ण कानाफूसियाँ होती रहीं। और फिर बबूल की ओट से एक साया उठी और सुहेल की आवाज़ आई—"चलो, चलें, या तुम पहिले चली जाओ, वहाँ अकेली अकेली घबरा जाओगी।"

"नहीं," नरगिस ने जवाब दिया—"पहिले तुम जाओ, पौ फटते ही मैं गाँव में आ जाऊँगी। अब अगर मुझे रास्ते में कोई मिल जाए और पूछ बैठे कि मैं इस समय किधर गई थी, तो मैं क्या जवाब दूँगी?"

और सुहेल बोला—'तो फिर पौ फटे तक मैं यहीं तुम्हारे पास ही क्यों न पड़ा रहूँ?'

'नहीं, नहीं, सुहेल!" दबी दबी और विनयपूर्ण आवाज़ आई—'तुम जाओ, बस—अब तुम जाओ!"

और सुहेल धीरे धीरे क़दम बढ़ाता टीलों की दूसरी ओर ग़ायब हो गया। प्रातःकाल का तारा बहुत ऊँचा चढ़ आया था और पूर्व का अंधकार कँप-

कँपाने लगा था। मेरे मन में दिल्ली की कसीदा काढ़ती [redacted] लड़कियों और यहाँ की ग्रामीण रमणियों की मूर्तियाँ सिमटने लगीं और अन्त में एक परछाईं में समा गईं, जो मेरे सामने बबूल की ओट में बैठी जाने किधर देख रही थी।

अचानक एक विचार मेरे हृदय को खरोंचता हुआ मेरे मस्तिष्क में घूमने लगा। वह विचार ठीक ऐसा घूम रहा था, जैसे लड़के तालाबों की सतह पर पत्थर थिरकाते हैं और वह लम्बी-सी सफ़ेद रेखा उत्पन्न कर बहुत से दायरे बनाते और बुलबुले छोड़ते तह की ओर डूबने लगते हैं।

एक बहुत लम्बा चक्कर काट कर मैं उस बबूल की ओर चला, जहाँ नरगिस पौ फटने की प्रतीक्षा कर रही थी। सीटी बजाता हुआ मैं उसके निकट से गुज़रा। वह बबूल के नीचे गठरी की भाँति सिमटी जा रही थी। मैं यों ही लापरवाही के ढंग से बबूल के निकट से गुज़रते हुये ठिठक कर खड़ा हो गया। "शा शी !" करते हुये मैंने ताली बजाई, और फिर दो क़दम आगे बढ़ कर मैंने नरगिस के शरीर को छू लिया। 'शी !' मैंने फिर ताली बजाई, और अब नरगिस पागलों की तरह बाल झटक कर उठ बैठी। उसका सीना तेज़ तेज़ साँसें लेने के कारण उभरा और डूबा जा रहा था और उसके केश रह रह कर बबूल की सूखी टहनियों से लिपटे जा रहे थे।

"कौन है तू ?" मैंने डपट कर पूछा।

"अरे ! ग़ज़नफ़र !" दबी दबी आवाज़ में वह बोली।

"तुम ने मुझे कैसे पहिचाना ?"

"तुम्हारी शिकारी पोशाक से ?"

"और तुम कौन हो ?"

"मैं मैं मैं इधर समन से बारात के साथ आई हूँ। वहाँ नाचते गाते थक गई, तो जी बहलाने इधर चली आई।"

"हा हा हा !" मैं हँसा। 'मैंने समझा, कोई हिरनी छिपी बैठी है। शिकारी जहाँ जाय, शिकार का भूत उसके सिर पर सवार रहता है। अच्छा हुआ कि मेरे पास इस वक्त बन्दूक़ नहीं थी, नहीं तो बड़ा बुरा होता।"

वह चुप बैठी रही, उससे बात करने के कई बहाने तेज़ झोंका की तरह मेरे हृदय पर बहुत-सी लहरें पैदा करते गुज़र गये। पूर्वीय क्षितिज पर अँधेरा उसी तरह काँप रहा था और प्रातःकाल का तारा, मानो मेरी भावनाओं के विह्वल तूफ़ान पर मन ही-मन मुस्करा रहा था। आख़िर मैं बोला—"कहो तो मैं तुम्हें गाँव पहुँचा दूँ।"

उसने बढ़ते हुये केशों को एक हाथ से इकट्ठा करके दुपट्टे को पीछे सरकाते हुये कहा—"मैं ख़ुद चली जाऊँगी, मैं रास्ता जानती हूँ।"

"रास्ता तो तुम ज़रूर जानती होंगी।" मैंने कहा—"लेकिन मुझे बुलबुल की चिन्ता है, वह तुम्हारी राह देख रहा होगा।"

वह यों चौंक पड़ी, जैसे नन्हें बच्चे सोते में बादल की गरज से डर कर घबरा जाते हैं और बदहवास हो कर इधर उधर देखने लगते हैं। उसने चारों ओर निगाहें दौड़ाईं और फिर मुझे कुछ चण पागलों की भाँति घूर कर गरदन झुका ली और रेत को मुट्ठियों में भरने लगी।

"मैं सब-कुछ देख रहा था!"—मैंने उसके कलेजे में एक और सुई चुभो दी। मुझे कमज़ोर की कमज़ोरी से लाभ उठाने में बड़ा आनन्द आता है। बोला—"मैं सब-कुछ देख रहा था। लेकिन नरगिस, तुम आज इतना उदास क्यों थीं? बुलबुल बेचारे का आवाज़ भर्राई हुई था। न जाने हम रेत में इस प्यार के कितने आँसू सूख चुके हैं! नरगिस, यद्यपि मुझे कोई अधिकार नहीं कि तुम्हारे निजी मामलों में दख़ल दूँ, और मुझे आशा भी नहीं कि जो बात तुम बुलबुल को न बता सकीं, वह मेरे सामने कह जाओगी, लेकिन अगर मैं तुम्हारे किसी काम आ सकूँ तो मैं बड़ी ख़ुशी से यहाँ चन्द दिन ठहर जाऊँगा। देखो न बुलबुल मेरा मित्र है, यद्यपि मेरी और उसकी मित्रता चन्द घण्टे पूर्व ही हुई है, लेकिन मैं उससे स्नेह करने लगा हूँ। तुम्हें उसके ख़िलाफ़ कोई शिकायत पैदा हो गई हो, तो मुझे बता दो। मैं उसे सीधे रास्ते पर ले आऊँगा। मैं शिकारी हूँ, और मेरा निशाना बहुत कम चूकता है। सुनती हो?"

"हाँ! सुन रही हूँ!" वह बोली—"बुलबुल से मुझे कोई शिकायत नहीं। बुलबुल मेरा बड़ा पुराना साथी है। बुलबुल के मन में कभी मेरी तरफ़ से मैल नहीं आया। बुलबुल गीत बनाता है और यह तो आप जानते ही होंगे कि गीत बनाने वाले को लड़कियाँ बहुत चाहती हैं। लेकिन वह उन सबके सौंदर्य की ओर से इस प्रकार आँखें बन्द कर लेता है, मानो वह मेरे अतिरिक्त दुनिया की सारी कुमारियों के लिये अन्धा हो चुका है। लेकिन मैं ... मैंने ... मुझे ..."

वह रुक गई और मुट्ठियों में भरी हुई रेत नीचे गिराने लगी।

"तुम ने बात पूरी नहीं की!" मैं उसके पास आ कर बोला।

"मैं ..." वह हकलाने लगी—"मैं आज बहुत उदास हूँ। मैं बारात के साथ न आती, तो अच्छा था!"

मैंने पूछा—"लेकिन आखिर तुम्हारी यह उदासी सुतुज के साथ लापरवाही से क्या सम्बन्ध रखती है ?"

और अचानक हवा में उसका दुपट्टा फड़फड़ाया और मेरी बाहों से लिपट गया। उसने दुपट्टा खींचने के लिये हाथ बढ़ाया। इधर मैंने अपनी बाँह छुड़ाने की कोशिश की, और हम दोनों के हाथ एक दूसरे से छू गये। मेरी बाँह से उसका दुपट्टा लिपटा रह गया और वह पीछे हट गई। उसके बाल हवा में लहराने लगे और मैंने उसका दुपट्टा बाँह से उतारते हुए कहा—"लो।" और हमारे हाथ फिर छू गये। लेकिन अब की जो छुए, तो अलग न हो सके, जैसे चिपक कर रह गये हों। हम दोनों की अँगुलियों में कोई विचित्र सा कंपन भर गई। और वहीं बबूल की सूखी टहनियों की आड़ में मैंने देखा कि पूर्वीय क्षितिज पर पौ फट रही है। नरगिस के चेहरे के इर्द गिर्द मुझे एक आभा दिखाई पड़ने लगी। मैंने उसकी नरगिसी आँखों की चमक, उसके गुलाबी गालों की शानुमयहाल नर्मी और उसके पतले अधरों की कंपन पर निगाहें गाड़ दीं और जब हमारी उकती हुई अँगुलियाँ ढीली हुईं और हमारे सिर पर से एक पक्षी सन से गुज़र गया, तो मैंने पूछा—"लेकिन तुम उदास क्यों हो, नरगिस ?"

और वह मेरी पक्षी के दाने पर अँगुली फेरते हुए बोली—"आज रात, जब से मैंने आप की बातें सुनी हैं, और फिर आप को सुतुज के धोखे में जगा बैठी हूँ तब से मेरे मन में आपका चेहरा घूम रहा है। मुझे इन जगलों से नफ़रत हो गई है। मुझे आप से और आप के देश से प्रेम है, लेकिन आप परदेशी हैं। आप आज या कल यहाँ से चले जायँगे और मैं रातों को सतलज के खजूरों के झुरमुट में बैठ कर आप की परछाइयों से बातें किया करूँगी।—आप कब आयँगे ?"

"मैं कभी नहीं जाऊँगा।" मैंने उसका हाथ दबाते हुए कहा। आठ दस कौवों का गोल हमारे सिर पर से काँव काँव करता सोसन की तरफ उड़ गया।

और जब वह बबूल की ओर चल दी, तो मैंने अनुभव किया, मानो अचानक मुझ पर उल्लास के बादल बरस पड़े हैं। जैसे सोये हुए भाग्य की गरदन कट कर अलग जा गिरी है और जैसे समस्त विश्व की युवतियाँ और विशेषकर दिल्ली के उस कोठे की युवतियाँ लपक लपक कर मेरे चरणों पर अपने मस्तक रख रही हैं और कहती हैं—'हमें चाहो।'—और मैं सब को

दुहराते हुए कहता हूँ—'नरगिस के फूलों और सूरज के कोरों की क्या बातें ! आओ यह सितारा इन्हीं आँखों में छिपा लेगा—आओ !' और उन युवतियों को दुहराने की धुन में मैंने कई बार चलते चलते रेत का एक तूफ़ान उठा दिया।

मैं लौटकर वापस पहुँचा और जब बारात के जाने की तैयारियाँ होने लगीं, तो दूल्हा मुनुक ने मेरे कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा—"अब आप का क्या इरादा है ?"

मैं मुस्कराते हुए कहने लगा—"मैं यमन में तुम्हारे साथ कुछ दिनों रहना चाहता हूँ। मुझे तुम जैसा साफ स्वभाव वाला प्यारा दोस्त कहीं नहीं मिला और तुम्हारे साथ कुछ वक़्त बिता कर मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी।"

और मुनुक प्रसन्न हो कर बोला—'आप मेरी आँखों पर रहिये, मेरा घर आप का घर है आप शौक से तशरीफ़ लाइये !'

और मेरा बूढ़ा नौकर तड़प कर कहने लगा—'लेकिन मियाँ जी, वह मेरी बुढ़िया बेचारी खाट पर पड़ी घड़ियाँ गिन रही होगी मेरे सिवा उसे पूछने वाला ही कौन है ! फिर इस जगह में हिरनियाँ तो अब मिलतीं नहीं, जो समय काट सकें।"

मैंने उसकी पीठ ठोंकते हुए कहा—"मिलती हैं। लेकिन तुम खुशी से वापस चले जाओ। मेरे साथ तुम कहाँ रेत फाँकते फिरोगे ! कुत्तों को भी साथ ले जाओ मैं मुनुक भाई के साथ कुछ दिनों रह कर वापस आ जाऊँगा।'

और बूढ़ा भवें झुका कर और उंगलियाँ फेर कर मुझे यों घूरने लगा, मानो कह रहा हो—'बच्चे, तुम पर भूत प्रेत का असर हो गया है, और अब तुम पर मेरा बस नहीं चल सकता। खुदा ही तुम्हें वापस लाये तो लाये !

और जब बारात यमन को वापस रवाना हुई तो सब नौजवान सारबानों ने मेरी ओर इशारे करते हुये मुनुक से आ कर पूछा—"क्या आप भी यमन जा रहे हैं ?"

'हाँ !' वह गर्व के साथ सब को उत्तर देता और सब एक दूसरे की ओर देख कर मुस्कराते और कहते—"बड़ी खुशी की बात है !"

और ऊपर मुनुक के ऊँट पर झूलते हुये कजावे में मैंने नरगिस को देखा जिसका चेहरा तेज़ धूप में कुन्दन की तरह दमक रहा था और जिसके होंठों पर मुस्कान थी, जो शायद सुबह के तारे की कँपकपाहटों से मिल कर बनी थी।

उस दिन मुझको मालूम हुआ कि कवि बेचारे झूठ नहीं लिखा करते, बिल्कुल सच कहते हैं। उनकी कल्पना में अतिशयोक्ति का दोष निकालने वाले ज़रा किसी ऐसे कजावे की छाया में चल कर देखें, जिसपर एक सुन्दर नव युवती बैठी झूल रही हो, तो उन्हें अपनी इस धारणा को बदलने के लिये विवश होना पड़ेगा। मैं चाहता था कि इस कजावे के साथ मरते दम तक चलता रहूँ और फिर ऐसा हो कि यह ऊँट अपने क़ाफ़िले से अलग हो कर भटक जाय। असंख्य टीलोंवाले सुनसान विस्तृत मैदान में यह कजावे वाले नीचे उतरें और वहाँ हम चाँदनी रातों और रुपहले प्रात काल की गोद में ऐसी मीठी मीठी बातें करें जो कवि लोग अपनी कविताओं में लिखा करते हैं और फिर अचानक मुझे बुलबुल का ध्यान आ गया—'उस ऊँट के भटक जाने से बेचारे बुलबुल पर क्या बीतेगी! किसी दीवार से सिर फोड़ लेगा, पागल हो जायगा और तपती दोपहर में, जलती रेत पर नंगे पाँव खोजता रहेगा और किसी उदास सन्ध्या को, अब ' लेकिन अचानक मुझे बुलबुल की आवाज़ ने चौंका दिया। वह गा रहा था—

"तुम्हारा चेहरा चाँद की तरह बेरंग और अप्रतिभ क्यों है? तुम्हारे बालों पर यह गर्द और तुम्हारी पलकों पर यह नमी कैसी है? तुम्हारी चाल में यह ढीलापन और तुम्हारी बातों में यह निराशा कैसी? तुम यह क्यों नहीं कह देतीं कि तुम ने कहीं मेरी मौत का फ़रिश्ता देख लिया है?"

ऊँटों की घंटियाँ टन टन बजती आ रही थीं और उनके क़दम रेत पर हल्की-सी 'खिस खिस' का शब्द उत्पन्न करते, टीलों के बीच नाचते हुए बढ़े जा रहे थे। कजावे पर एक बार मैंने नरगिस की ओर देखा, जो बुलबुल पर दृष्टि गाड़े कुछ सोच रही थी और जैसे ही उसकी आँखें मेरी आँखों से मिलीं, वह मुस्करा दी और मैं समझा, मानो वह ऊँट अपने क़ाफ़िले से भटक गया है।

समन बड़ा सुन्दर गाँव था। पचास साठ घिरौंदे और फिर सारे गाँव को घेरे हुये लम्बी लम्बी खजूरों की पंक्तियाँ! इन खजूरों के आस पास खेत थे और खेतों के दूसरी ओर वही रेत का समुद्र! बुलबुल मुझे अपने घर ले गया। रंगीन पायोंवाले एक पलंग पर खद्दर की नई चादर बिछाई गई और उसे एक छप्पर के नीचे [illegible] दिया गया। फिर बुलबुल और उसके घर वाले मेरे पास आ कर बैठे तो ऐसी प्रेमपूर्ण बातों का सिलसिला शुरू हुआ कि मेरे मन में आया कि यहाँ से खिसक कर नरगिस के पास चला जाऊँ और उससे कहूँ—

और वह पूर्व की तरफ इशारा करते हुए बोला—"उधर, बस सुबह के पास।"

और मैंने मन-ही-मन सुबह का शुक्र अदा किया कि हमारा मुँह पश्चिम की ओर था।

अब तीन रातें कब्रों के बीच रंगीन सुबह के साथ बीत चुकी और अँधेरी रात का प्रारम्भ था—और जब मैं नरगिस की आँखों पर सिर रख कर उसे मस्तर शीराजी की एक कविता का अर्थ समझा रहा था, तो अचानक एक बड़ी सी छाया हमारे सामने आ खड़ी हो गई। हम दोनों चौंक उठे और हमारे सिर चकरा गये। मैंने भयभीत होकर पूछा—"कौन है तू?"

"मैं मुसुक हूँ!" वह बोला—"और यह नरगिस और आप शायद अकेले नहीं हैं!"

और वह निकट आकर एक हाथ मेरे कन्धे पर और दूसरा नरगिस के कन्धे पर रखते हुये बोला—"लेकिन आप को घबराने की जरूरत नहीं। मैं आप को कोसने नहीं आया, मैं आप से सिर्फ़ एक बात करने आया हूँ। आप जानते हैं नरगिस ने मुझे कवि बनाया, नरगिस ने मेरा बचपन शर्तें बताई, नरगिस ने मेरे जीवन पर रसों की फुवारें बरसाईं! आप सब-कुछ जानते हैं, क्योंकि आज चौथी रात है। मैं इन कब्रों की ओट में आप दोनों की बातें सुनता रहा हूँ। आप मेरे दोस्त हैं, यद्यपि आप को यह अधिकार न था कि आप मेरी प्रेमिका को हथिया लेते, लेकिन अब—अब कि नरगिस दुल्हन में एक खुशी है मैं अपनी यह अमानत आप को सौंपता हूँ। मैं स्वाभिमानी किसान हूँ। मैं चाहता, तो आप के कलेजे में एक तेज छुरा भोंक करके आप को इन्हीं टीलों पर फेंक देता और गाँव गिद्ध आप की बोटियाँ नाच नाच कर आप के बाहर पर आ मँडराते। लेकिन मैं कवि हूँ, मैं गीत बनाता हूँ और मैं सिर्फ़ अपनी प्रेम पिपासा बुझाने का कायल नहीं। मुझे प्रत्येक दिल के धड़कने का अनुभव है। नरगिस से आप को प्रेम हो गया तो इसमें आपका कुसूर नहीं मैं अगर आप के प्रेम में बाधा डालूँ, तो यह मेरा पागलपन होगा। क्योंकि नरगिस के दिल में अब मेरे लिये कोई जगह नहीं रही। लेकिन इतना याद रखिये कि आप परदेशी हैं, आप मुसाफ़िर हैं। नरगिस का दिल न तोड़ियेगा। अगर नरगिस का दिल आप के हाथों टूटा, तो याद रखिये लेकिन छोड़िये इस क़िस्से को, मैं सिर्फ़ अपनी नरगिस को आप के हवाले करने आया था। मैं अपने दोस्त और अपने मेहमान पर हाथ उठाना गुनाह समझता हूँ। इसलिये

नरगिस, बैठ जाओ यहाँ, और ग़ज़नफ़र अली खाँ का सिर अपनी जाँघों पर रख लो। और ग़ज़नफ़र अली खाँ साहब! आप इसे किसी कवि की कविता का मतलब समझा रहे थे, समझाइये, और अब मुझे इजाज़त दीजिये और मेरे इस हस्ताक्षेप को बुरा न मानियेगा, क्योंकि जब जलती हुई लकड़ियों पर पानी डाला जाय, तो उसमें से जो धुआँ उठता है, वह कड़ुवा होता है। अच्छा खुदा हाफ़िज़!"

हम दोनों अवाक् खड़े थे। और बुल्बुल धीरे धीरे चल कर खजूरों की पंक्ति में ग़ायब हो गया था। कितनी ही देर तक हम ने एक-दूसरे से कोई बात न की और जब नरगिस की सिसकियाँ ऊँची हो गईं, और मेरे हृदय की धड़कन से खजूर के तने भी काँपते हुये प्रतीत हुये, तो मैं धम से रेत पर बैठ गया। नरगिस भी निर्जीव लोथड़े के समान गिर पड़ी। वह रोती रही, मैं सोचता रहा और जब उसने रोते रोते अपना सिर मेरे कन्धे से लगा दिया, तो मैंने भर्राये हुये स्वर में कहा—"यह बुल्बुल मनुष्य है या देवता? और नरगिस! हम जाग रहे हैं या स्वप्न देख रहे हैं?"

और वह अपने आँसू पोंछते हुये बोली—"हम जाग रहे हैं, और वह बुल्बुल ही था, जिसने अपने प्रेम की लाश को खुद ही कफ़न दिया है। लेकिन मैं क्या करूँ ग़ज़नफ़र? मैं लाचार हूँ, तुम इतने अच्छे, इतने प्यारे हो—और मुझे तुम से और तुम्हारे देश से इतना प्रेम है "

(७)

जल्दी ही वे बादल छट गये, जो बुल्बुल का साया हम पर फैला गये थे। और जब मैं नरगिस से विदा हो कर बुल्बुल के घर पहुँचा, तो सोचने लगा कि मैं क्या मुँह दिखाऊँ अपने मेज़बान को! मन में आया कि चल दूँ यहाँ से, लौट जाऊँ अपने शहर को, लेकिन एक अबाबील खजूरों के उसी स्वीय झुण्ड से उड़ती हुई आई और सन से मेरे सिर पर से गुज़र गई। समन से वापस चला जाना मेरे लिये बहुत कठिन था—और अब, जब बुल्बुल ने इतना बड़ा त्याग किया, तो अब उससे झिझक कैसी, जब उसका मन इतना साफ़ है, तो अपने मन पर यह मैल कैसा! और जब मैं उसके मकान की दालान में दाखिल हुआ, तो वह खाट पर उठ बैठा और बोला—"आप आ गये?—आप को मेरी बातों का कुछ ख़याल तो नहीं है? आप मेरे भाई हैं और यक़ीन कीजिये कि मैं आप से ख़फ़ा नहीं हूँ। मैं जिस अमानत का भार न उठा सका, वह आप के हवाले कर दी और अब आप के हाथ में मेरी अमानत की लाज है।"

मैं चुपचाप बिस्तर पर लेट गया। और देर तक हैरान होता रहा कि यह संसार विचित्र है, यहाँ एक दूसरे के प्रेम का इतना अधिक आदर किया जाता है और यह विचित्र प्रेमी है जिसने अपनी भावनाओं का भट्टा अपने सीने में छिपा रखा है—फुँक रहा है, लेकिन दम नहीं मारता।

और अब यह सिलसिला शुरू हुआ कि जब रात को सब लोग सो जाते, तो यह कहता—'भाई साहब, आप अभी तक बाहर नहीं गये?' मैं लज्जित और परेशान बाहर चला जाता और जब लौटता तो यह खाट पर से उठते हुये कहता—'आ गये आप? किसी चीज़ की ज़रूरत है?'

एक महीना बीत गया। प्रति रात नरगिस की काकुलें मेरी बाहों पर बिखर जातीं उसका सर जाँघों पर रख कर मैं देर तक खजूरों की पत्तियों से झाँकते हुये तारों को देखता रहता। अब हम बातें बहुत कम करते थे क्योंकि वे सब सुन्दर विचार एक दूसरे के सामने प्रगट कर चुके थे जो साधारण प्रेम कहानियों में प्रयुक्त होते हैं और अब एक ऐसी रात आ गई कि जब मैं खजूरों के उस झुण्ड के निकट पहुँचा तो मुझे उसके इर्द गिर्द फड़फड़ाते हुये चिमगादड़ों वाले भयानक भूत जादूगर नाच नाचते हुये दिखाई दिये और खजूरों की डालें मुर्दा के पञ्जों की भाँति वायु मण्डल में धीरे धीरे झूलती दिखाई दीं। मेरे हृदय में वह लालसा न था मेरी रगों में वह जोश न था मैं रेंगता हुआ झुण्ड के पास पहुँचा। नरगिस मेरी प्रतीक्षा में बैठी थी। बोली— तुम ने आज इतनी देर क्यों लगा दी? इन्तज़ार करते करते मेरी आँखें पथरा गईं। तुम आज थके थके क्यों हो और तुम्हारे चेहरे पर यह उदासी क्यों है? शाहज़ादे तुम आज क्या सोच रहे हो?'

वास्तव में मैं अब नरगिस से थक चुका था। मानव प्रकृति शान्ति की इच्छुक होती हुई भी एक विशेष समय में शान्ति से भागना चाहती है। मुझे अब उसकी मुलायम जाँघों में फौलाद की सी सख्ती महसूस होने लगी। और जब उसके बाल मेरी बाहों पर लहराते तो मेरे शरीर में एक झुरझुरी सी दौड़ जाती, मानो चींटियाँ रेंग रही हैं। यह विचित्र जीवन है। मैं उस दिन सोचता रहा कि दिन भर अपरिचित किसानों के जमघट में बैठ कर फ़िज़ूल गप्पें हाँके, और रात—एक अपरिचित लड़की के लिये इस भयानक वन में इन डरावने खजूरों के झुण्ड में बिताओ, न सिनेमा, न रेडियो न चाँदनी चौक और न कनाट सरकस न हुमायूँ का मक़बरा और न जामे मस्जिद की सीढ़ियाँ। न एक पैसे टीले—तेज़ धूप और फिर रात को यह एक ही लड़की—नित्य

वही बाज़, वही भौंहें वही आँखें और फिर वही बातें ! निचोड़ी हुई हड्डियाँ, हर वक़्त प्राणों का भय और फिर एक उदास और थकी हुई भीगी आँखों-वाला चुपचाप मेज़बान, जो न पहिले के समान गाता है और न ठहाके लगा कर हँसता है, और यह देहाती छोकरी—यह मुझसे प्रेम नहीं करती—मेरे देश से, नवीन सभ्यता के उस गहवारे से प्रेम करता है, जहाँ उसके विचार में ग़ज़नफ़र बिना किसी झिझक और भय के बाज़ार के ठीक बीचोबीच खड़ा हो कर उसके अधर चूम सकता है। यही तो कारण है कि वह अक्सर कहा करती है— 'तुम मुझे अपने देश ले जाओगे न ? तुम मुझे ट्रामों पर चढ़ाओगे, तुम मुझे रेडियो सुनाओगे सिनेमा दिखाओगे, नये नये कपड़े दिलवाओगे, मेरे कानों में सोने के बुन्दे होंगे और बाँहों में हाथी दाँत का चूड़ा—है न ?''

मुझे उबकाई आने लगी। मैं अँगड़ाइयाँ लेने लगा मेरी आँखें नींद से बोझल हो गईं। मैं थक चुका था, मुझे अपने इर्द गिर्द ठहरे हुए पानी की गंध-सी आने लगी। उस दिन जब नरगिस ने मेरी उदासी का कारण पूछा तो मैं बोला—"वास्तव में मुझे शिकार का बहुत शौक़ है नरगिस ! एक महीने से मैंने कोई नया शिकार नहीं किया। कहो तो कल शिकार पर चला जाऊँ ? दो चार दिनों के बाद लौट आऊँगा और फिर तुम्हें अपने देश ले जाऊँगा, जहाँ हर काम बिजली के द्वारा होता है। इमारतों पर चढ़ने के लिये सीढ़ियों की ज़रूरत नहीं। बटन दबाओ और झट से ऊपर ! दूर जाने के लिये पैदल चलने की ज़रूरत नहीं मोटर में बैठो और छपाक से वह जा रहो ! नये कपड़े ख़रीद कर दरज़ी की दूकान के चक्कर काटने की ज़रूरत नहीं सिले सिलाये जम्पर और साड़ियाँ ख़रीदो और पल भर में दुलहिन बन जाओ—चलोगी न ?'

लेकिन वह तो मोम की मूर्ति बन कर बैठी थी। मैंने कन्धा हिलाया, तो रोने लगी। मैंने झल्ला कर कहा—"विचित्र बात है, मैं अब उम्र भर इस घुटन के नीचे दबा कैसे सड़ता रहूँ ! प्रेम के अलावा आदमी को दूसरे काम भी तो होते हैं ! मेरे माँ बाप हैं, भाई-बहिन हैं। मेरे क़ीमती शिकारी कुत्ते हैं। उनका देख भाल करना भी मेरा फ़र्ज़ है। शिकार भी खेलना है, और फिर लौट आऊँगा यहाँ ! यहाँ से कभी न जाने का मैंने जो वादा किया था, उसका यह मतलब तो नहीं था कि बस यहीं जम कर बैठ रहूँगा अरे यही आठ-दस दिन लगेंगे, फिर यही घुटन होगा और यही ग़ज़नफ़र होगा और ...'' लेकिन वह वैसे ही रोती रही, उसके आँसू की कुछ बूँदें मेरी हथेली पर गिरीं और मुझे ऐसा अनुभव हुआ, मानो मेरे हाथ पर किसी ने तेज़ाब छिड़क दिया हो। मैं घबरा कर उठा—"अच्छा नरगिस, आज इतवार है न ?

अगले इतवार को इसी समय यहीं मौजूद रहना, मैं ज़रूर आऊँगा, सुनतीं हो ? अच्छा !'

मैं उसके हाथ को थपक कर कुछ बाहर निकल आया, लेकिन वह वहीं बैठी रही और जब बहुत देर के बाद उठी, तो बड़ी तीव्रता और घबराहट के साथ ! क़दम इस प्रकार उठाये मानो उड़ जायगी। उसके हर क़दम पर वो रेत उड़ने लगी, जैसे मैंने नरगिस से प्रथम मिलन के अवसर पर वो पर्दे हटाई थी।

दूसरे दिन लड़के से मैंने सुस्तुल से शिकार के बहाने से इजाज़त माँगी। उन भीगी हुई आँखों में चमक-सी पैदा हो गई और वह मेरी उँगलियाँ दबाते हुए बोला—"आप वापस आयेंगे ? आप साथ अपने घर की राह तो नहीं लेंगे ?"

"नहीं, नहीं !' मैंने मुस्कुराते हुए जवाब दिया—"यह भी कभी हो सकता है ? बस हफ़्ते भर के लिये इधर उधर घूम घाम कर लौट आऊँगा, जंगली गाँवों में मेरे बहुत से मिलने वाले हैं, मैं उनसे मिल कर जल्द लौटूँगा, मैं तुम्हें कैसे छोड़ सकता हूँ। तुम तो सब कुछ समझते हो !"

'जी हाँ।" वह कुछ सोचते हुए बोला— 'सब कुछ समझता हूँ इसीलिये तो कहा था कि जल्द लौटियेगा।'

और जब मैं समन से निकला, तो सिर पर पाँव रख कर भागा, जैसे कोई तितली किसी बच्चे की टोपी में बहुत देर तक क़ैद रहता है और जब उस कारागार से निकलता है, तो इस प्रकार तेज़ और सीधी उड़ती है, मानो सृष्टि के अन्तिम छोर पर जा कर दम लेगी !

शाम को मैं एक स्टेशन पर पहुँचा। देहली का टिकट ले कर गाड़ी पर सवार हुआ और सुबह तड़के देहली आ उतरा। अपने कोठे पर पहुँचा, तो कुत्ते मेरे क़दमों में लोटने लगे। मेरा बूढ़ा नौकर मुँह लाले, भवें लटकाये मुझे घूरने लगा। बोला— 'आप घबराये हुये हैं आप हाँफ क्यों रहे हैं ? आप आप मैं जुमा पीर जुम्मा से कोई गण्डा-तावीज़ लाता हूँ। मैं क्या नहीं कहता था कि आप पर भूत प्रेत का साया पड़ गया है ?'

मैंने ज़ोर से ठहाका लगाया और हँसता हुआ छज्जे पर आया, तो अचानक रंगीन शीशों का परदा और इनकम-टैक्स अफ़सर साहब की एक लड़की मेरे कमरे की ओर इस प्रकार देखती हुई दिखाई पड़ी मानो उसने यहाँ से कोई विचित्र आवाज़ सुन ली है। मेरे ठहाके रुके, तो वह आँखें झपकाने लगी और

जब मैंने ताज़ी हवा के बहाने से खिड़की खोल दी, क्योंकि अब मुझे लड़कियों से वह पहिला सकोच नहीं रहा—तो वह झट दीवार के पीछे छिप गई, लेकिन दीवार में असख्य छेद थे ! जिनमें से मैंने देखा कि वह मेरी ओर देख रहा है ! मेरे हृदय में जुगनू-से चमकने लगे—जीवन परिवर्त्तन का नाम है, और सूखी मजूरों की ओट में बैठी हुई छोकरी से ईंटों की इस दीवार के पीछे दबकी हुई लड़की कितनी प्यारी लगती है ! मैंने एक काग़ज़ के पुर्जे पर 'मिज़ाज शरीफ़ !' लिखा और एक कंकड़ पर लपेट कर परली छत पर फेंक दिया। मैंने खिड़की बन्द कर दी। क्योंकि अब नौकर कुर्से बाँध कर मेरे जूते उतारने आ रहा था। वह मेरे पास आ कर बैठा ही था कि अचानक 'खट' से एक रगीन शीशा किरची किरची हो कर फ़र्श पर बिखर गया और एक काग़ज़ में लिपटा कंकड़ मेरे सामने आ गिरा।

"कौन बेवकूफ़ का बच्चा है ?" मेरा नौकर चिंघाड़ता हुआ खिड़की की ओर लपका। "कौन है अपनी माँ का लाड़ला ?" और फिर अचानक पाँव पकड़ कर फ़र्श पर बैठ गया था। बिलबिलाता और पत्थर फेंकने वाले को हज़ारों बातें सुनाता वह सीढ़ियों पर उतर गया। मैंने कंकड़ पर से काग़ज़ उतारा। ज़नानी लिखावट में लिखा था—

"मिज़ाज पूछ के रग रग में बिजलियाँ भर दीं।
वह आये थे मेरे दिल की लगी बुझाने को।"

'शिक्षित मालूम होती है।' मैंने चटख़नी खोलते हुये सोचा। हाथ के इशारे से उसे बेर की रसीद पहुँचाई, तो वह खड़ी हो गई। बड़ी देर तक मुझे देखती रही, मानो कह रही हो—'मेरी सब बहिनों की शादी हो चुकी है और मैं ही यहाँ रह गई हूँ। मेरा यहाँ अकेले जी नहीं लगता। मुझे एक [illegible] की ज़रूरत थी और मैं चकित था कि तुम इतने दिनों से इन रगीन [illegible] से नहीं झाँकते। मैं तुम्हारी राह देख रही थी। अच्छा है कि तुम आ गये। शुक्र है – शुक्र है !' और फिर उसकी आँखों में आँसू चमकने लगे और वह आँचल में अपना चेहरा छिपाती परे चली गई। दीवार के [illegible] में से मैंने उसका ऊँचा एड़ा की गुरगाबी देखी और मैं समझा, जैसे [illegible] एड़ी मेरी पसलियों को मेटखाता मेरे कलेजे में धँसी जा रही है।

यह कहने की ज़रूरत नहीं कि कंकड़ फेंकने का सिलसिला [illegible] तक जारी रहा और अगले इतवार को एक धुँधला [illegible] लेवेन्डर की [illegible] गया। [illegible]

एक पेड़ पर वह एक नवयुवक की जाँघों पर सिर रखे लेटी दिखाई पड़ी। वह कह रही था—"कौन कहता है कि अपने मँगेतर से शादी से पहिले मिलना असभ्यता है? लेकिन तुम अपने मित्रों में यह बातें न करना कि परसों मँगनी हुई और कल से मिलना-जुलना शुरू हो गया। कहेंगे कि मैं कोई और छोकरी हूँ।"

"पगली!" हँसते हुए नवयुवक ने उत्तर दिया।

और अचानक कुछ विचार खजूरों के साये सुरसुराते हुए, लहराते हुए बालों, मारगों होंठों और नम जाँघों वाली एक युवती को साथ लिये हुए कहां से आये और मेरे मस्तिष्क के इर्द गिर्द अत्यन्त तीव्र गति से नृत्य करने लगे।

लड़खड़ाता हुआ मैं वहीं से दहली के स्टेशन पर पहुँचा और तड़के ही उसी नन्हे स्टेशन पर जा उतरा और फिर समन का रुख लिया।

तेज़ धूप के कारण टीले तप रहे थे और चारों ओर एक भाप सी उठ रही थी। जलती हुई रेत मेरे जूतों में भर गई, लेकिन मैं हैरान व परेशान चलता गया—चलता गया—और जब सूर्य पश्चिमी टीलों की ओट में अस्त हो गया, तो अचानक पूर्व की ओर से एक आँधी उठी और क्षण भर में चारों ओर छा गई। मेरी आँखों में रेत भर गई। मेरे कपड़े फड़फड़ाने लगे, मेरे क़दम उखड़ उखड़ गये। बबूल सनसनाने लगे और कोई अज्ञात हाथ लपक कर मेरे गले को इस ज़ोर से दबाने लगा कि मेरा दम घुटने लगा। मैं निर्जीव हो कर एक जगह गिर गया और अचानक तीव्र झोंकों की भयभीत चीतकारों में मुझे एक गीत सुनाई दिया—

"आँधियो! और ज़ोर से चलो और सृष्टि को जड़ों से उखाड़ कर वायु में उड़ा दो।

"तूफानो! चिल्लाते हुये आओ और खजूरों के झुण्ड अपने कन्धों पर रख कर क्षितिज में जा मिलो।

"घटाओ! ओले गिराओ और समन व सोसन की चरागाहें धुनक कर रख दो।

"क्योंकि हे आँधियो, तूफ़ानो और घटाओ, इस संसार ने प्रेम को एक क्षणिक खेल समझ लिया है!"

मैंने स्वर पहिचान लिया। "सुम्बुल! सुम्बुल!" पुकारता हुआ मैं गरजते हुए तूफ़ान में इधर उधर दौड़ने लगा।

और फिर सामने एक ऊँट का साया उभरा। लपक कर मैं उसके निकट पहुँचा और चिल्लाया—"सुम्बुल, सुम्बुल!"

"आइये ग़ज़नफ़र अली ख़ाँ साहब, कहिये, ख़ैरियत तो है?"

"मैं तुम से मिलने आया हूँ।" मैंने उससे लिपटते हुए कहा।

वह निष्प्राण प्रतिमा के समान खड़ा रहा और फिर बोला—"शौक़ से! मुझे बड़ी ख़ुशी हुई!"

'तुम कहाँ से आ रहे हो?'

"चमन से।"

'मुझे नरगिस से भी मिलना है।" मैंने कहा।

'मिलिये!' वह ऊँट का नकेल को अपनी अँगुली के चारों ओर लपेटते हुए बोला—"लेकिन देखिये वह ज़्यादा होगी। सूर्य अस्त होने से सूर्य उदय होने तक वह लगभग दस नौजवानों से भेंट कर लेती है। हमने उसे एक खिलौना समझ कर फेंका और वह सारी दुनिया के लिये खिलौना बन गई। सुम्बुल और ग़ज़नफ़र आज-कल उसके रस्ता के भूत हैं। जाइये, ख़ुदा हाफ़िज़।"

और उसने नकेल खींचा और क्षण भर में बढ़ते हुए अंधकार में छाया बन गया। चारों ओर भूत से नाचने लगे और अब मैं अपने तपते दिमाग़ को दोनों हाथों से दबा कर बिलखते हुए अंधकार में एक ओर मुँह उठा कर चल दिया, तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मेरे हृदय में चमकते [illegible] जुगनुओं को अचानक किसीने मुट्ठी में दबा कर मसल डाला हो!

—श्री अहमद नदीम क़ासिमी

बोझ

मेरी और उसकी भेंट आज से ठीक दो वर्ष पहिले अपोलो बन्दर पर हुई थी। सन्ध्या का समय था, सूर्य की अन्तिम किरणें समुद्र का उन दूर बहती हुई लहरों के पीछे ग़ायब हो चुकी थीं। तट के बेञ्च पर बैठ कर देखने से वे मोटे कपड़े की तहें जान पड़ती थीं। मैं 'गेट आफ़ इण्डिया' के इस तरफ़ पहिली बेञ्च छोड़ कर, जिस पर एक आदमी चम्पी वाले से अपने सिर की मालिश करा रहा था, दूसरे बेंच पर बैठा था और दृष्टि सीमा तक फैले हुये समुद्र को देख रहा था। दूर—बहुत दूर, जहाँ समुद्र और आकाश घुल मिल रहे थे, बड़ी बड़ी लहरें धीरे धीरे उठ रही थीं और ऐसा लगता था कि एक बहुत बड़ा गँदले रंग का क़ालीन है, जिसे उधर से इधर को लपेटा जा रहा है।

तट के सभी विद्युत दीप प्रकाशित थे। उनका अक्स किनारे के प्रवाहित जल राशि पर कँपकँपाती हुई मोटी मोटी लकीरों के रूप में जगह जगह रेंग रहा था। मेरे पास पथरीली दीवाल के नीचे कई नौकाओं के छिपने हुये पाल और बाँस धीरे धीरे हिल रहे थे। वायु मण्डल में समुद्र की तरंगों और दर्शकों की आवाज़ एक गुञ्जन बन कर घुल गई थी। कभी-कभी किसी आने जाने वाली मोटर के भोंपू की आवाज़ उठती और ऐसा जान पड़ता, मानो बड़ी मनोरञ्जक कहानी सुनने के बीच किसी ने ज़ोर से 'हूँ' की है।

ऐसे वातावरण में सिगरेट पीने में बड़ा आनन्द आता है। मैंने जेब में हाथ डाल कर सिगरेट की डिबिया निकाली, मगर माचिस न मिली। न जाने कहाँ भूल आया था। सिगरेट की डिबिया वापस रखने ही वाला था कि पास से किसीने कहा—"माचिस लीजियेगा ?"

मैंने मुड़ कर देखा, बेंच के पीछे एक नवयुवक खड़ा था। यों तो बम्बई के साधारण निवासियों का रंग ही पीला होता है, लेकिन उसका चेहरा भयानक रूप से पीला था। मैंने उसको धन्यवाद दिया—"आप की बड़ी कृपा है।"

यह सुन कर उसने माचिस की डिबिया, जो उसके हाथ ही में थी, मेरी तरफ़ बढ़ा दी। मैंने फिर धन्यवाद दिया और कहा—"बैठिये।"

उसने जवाब दिया—"आप सिगरेट सुलगा लीजिये, मुझे जाना है।"

मुझे ऐसा महसूस हुआ कि उसने झूठ कहा है, क्योंकि उसके कहने से इस बात का पता चलता था कि उसे कोई जल्दी नहीं है और न उसे कहीं जाना है। आप कहेंगे कि लहजे से ऐसी बातों का पता कैसे चल सकता है, लेकिन सच यह है कि मुझे उस समय ऐसा ही अनुभव हुआ। अतएव मैंने एक बार फिर कहा—'ऐसी जल्दी क्या है, बैठिये!' और यह कह कर मैंने सिगरेट की डिबिया उसकी तरफ बढ़ा दी और कहा—"सिगरेट पीजिये।"

उसने सिगरेट के डिब्बे की तरफ देखा और जवाब दिया—"धन्यवाद, लेकिन मैं अपना ब्रैन्ड पिया करता हूँ।"

आप मानें या न मानें, मगर मैं कसम खा कर कहता हूँ कि इस बार उसने फिर झूठ कहा। इस बार फिर उसके लहजे से चुगली खाई और मुझे उससे दिलचस्पी पैदा हो गई। इसलिये मैंने अपने मन में निश्चय कर लिया था कि उसे जरूर बैठाऊँगा और उसे अपना सिगरेट पिलाऊँगा। मेरे ख्याल के मुताबिक इसमें कोई कठिनाई ही न थी, क्योंकि उसके दो वाक्यों ही ने मुझे बता दिया था कि वह अपने आपको धोखा दे रहा है। उसका जी चाहता है कि मेरे पास बैठे और सिगरेट पिये लेकिन एक ही समय में उसके मन में यह भी विचार पैदा होता है कि वह मेरे पास न बैठे और मेरा सिगरेट न पिये। अतएव हाँ और ना' का यह टकराव उसके लहजे में स्पष्ट रूप से मुझे दिखाई पड़ रहा था। आप विश्वास कीजिये कि उसका अस्तित्व भी होने और न होने के बीच में लटका हुआ था।

उसका चेहरा, जैसा कि मैं कह चुका हूँ, अत्यन्त फीका था। इस पर उसकी नाक, आँखें और मुँह के चिह्न इतने अस्पष्ट थे कि जान पड़ता था, मानो किसी ने चित्र बनाया है और उसको पानी से धो डाला है। कभी-कभी मेरी ओर देखते देखते उसके ओंठ ऊपर से आते लेकिन फिर रात में लिपटी हुई चिनगारी की भाँति सो जाते। उसके चेहरे के दूसरे चिह्नों का भी यही हाल था। आँखें गँदले पानी की दो बड़ी-बड़ी बूँदें थीं, जिनपर उनकी छितरी पलकें झुकी थीं। बाल काले थे, मगर उनकी स्याही जले हुये कागज़ की भाँति थी, जिसमें भूसलापन भी होता है। करीब से देखने से उसका नाक का सही नक्शा मालूम हो सकता था लेकिन दूर से देखने पर वह बिलकुल चिपटी सी मालूम होती थी। क्योंकि जैसा मैं इससे पहिले कह चुका हूँ उसके चेहरे के चिह्न बहुत अस्पष्ट थे।

उसका कद साधारण लोगों जैसा था। यानी न छोटा, न बड़ा। अलबत्ता जब वह एक खास ढंग से, यानी अपनी कमर की हड्डी का ढीला छोड़ कर, खड़ा

होता, तो इसके कद में काफ़ी फ़र्क़ पैदा हो जाता। इस तरह जब वह एकदम उठ खड़ा होता तो, क़द शरीर की अपेक्षा बहुत बड़ा दिखाई देता था।

उसके कपड़े ख़स्ता हालत में थे, लेकिन मैले नहीं थे। कोट की आस्तीनों के किनारे किसा पुराने बर्तन ■ ज़्यादा घिस गये थे और कमीज़ बस एक और धुलाई में ख़त्म था। मगर इन कपड़ों में भी वह स्वय को एक सम्मानित ढंग से पेश करने की कोशिश कर रहा था। मैंने जब उसकी तरफ़ देखा था, तो उसके समस्त अस्तित्व में चेतना की लहर सी दौड़ गई थी। और मुझे ऐसा मालूम हुआ था कि वह अपने आप को मेरी निगाहों ■ ओझल रखना चाहता है।

मैं उठ खड़ा हुआ और सिगरेट सुलगा कर फिर उसकी तरफ़ डिबिया बढ़ा दी, और कहा— 'लाजिये!"

यह मैंने कुछ इस ढंग से कहा और तुरन्त ही माचिस सुलगा कर उसको इस ढंग से पेश किया कि वह सब कुछ भूल गया और उसे सुलगा कर पीना शुरू कर दिया। लेकिन एकाएक उसे अपनी भूल का अनुभव हुआ, और उसने मुँह में से सिगरेट निकाल कर बनावटी खाँसी के लक्षण अपने गले में पैदा करते हुये कहा—"केवेण्डर मेरे लिये उपयुक्त नहीं। उसका तम्बाकू बहुत तेज़ होती है, मेरे गले में फ़ौरन ख़राश पैदा हो जाती है।"

मैंने उससे पूछा—"आप कौन सी सिगरेट पसन्द करते हैं?"

उसने हकला कर जवाब दिया—"मैं मैं मैं दरअसल सिगरेट कम पीता हूँ, क्योंकि डाक्टर अरोलकर ने मना कर रक्खा है। वैसे 'थ्री क्राइव' ही पीता हूँ। उसकी तम्बाकू बहुत तेज़ नहीं होती।"

उसने जिस डाक्टर का नाम लिया वह बम्बई का बहुत बड़ा डाक्टर है। उसकी फ़ीस दस रुपये है। और जिस सिगरेट का उसने नाम लिया, उसके विषय में आप को भी मालूम होगा कि वह बड़े महँगे दामों में आता है। उसने एक ही साँस में दो झूठ बोले, जो मुझे हज़म न हुये, मगर मैं चुप रहा। यद्यपि मैं आप से सच कहता हूँ कि उस समय मेरे मन में बड़ी इच्छा चुटकियाँ ले रही थी कि उसका गिलाफ़ उतार दूँ और उसके झूठ का भण्डा फोड़ दूँ। और उसे इस तरह लज्जित करूँ कि वह मुझ से क्षमा माँगे। मगर उस की ओर जब मैंने देखा, तो मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि उसने जो कुछ कहा है उसका अंश बन कर रह गया है। झूठ बोल कर चेहरे पर जो एक सुर्ख़ी सी दौड़ जाया करती है, वह मुझे न दिखाई पड़ी। बल्कि मैंने यह देखा कि वह जो कुछ कह चुका है उसको यथार्थ समझता था

मुझे ऐसा महसूस हुआ कि उसने मूर्ख कहा है, क्योंकि उसके कहने से इस बात का पता चलता था कि उसे कोई जल्दी नहीं है और न उसे कहीं जाना है। आप कहेंगे कि कहने से ऐसी बातों का पता कैसे चल सकता है लेकिन सच यह है कि मुझे उस समय ऐसा ही अनुभव हुआ। अतएव मैंने एक बार फिर कहा—'ऐसी जल्दी क्या है, बैठिये!' और यह कह कर मैंने सिगरेट का डिब्बा उसकी तरफ बढ़ा दी और कहा—'सिगरेट पीजिये।''

उसने सिगरेट के छापे की तरफ देखा और जवाब दिया—'धन्यवाद, लेकिन मैं अपना ब्रैन्ड पिया करता हूँ।'

आप मानें या न मानें, मगर मैं कसम खा कर कहता हूँ कि इस बार उसने फिर मूर्ख कहा। इस बार फिर उसके कहने में गुस्ताखी थी और मुझे उससे चिढ़-सी पैदा हो गई। इसलिये मैंने अपने मन में निश्चय कर लिया था कि उसे जरूर बैठाऊँगा और उसे अपना सिगरेट पिलाऊँगा। मेरे ख्याल के मुताबिक इसमें कोई कठिनाई भी न थी, क्योंकि उसके दो वाक्यों ही ने मुझे बता दिया था कि वह अपने आपको धोखा दे रहा है। उसका जी चाहता है कि मेरे पास बैठे और सिगरेट पिये, लेकिन एक ही समय में उसके मन में यह भी विचार पैदा होता है कि वह मेरे पास न बैठे और मेरा सिगरेट न पिये। अतएव 'हाँ' और 'ना' का यह टकराव उसके लहजे में स्पष्ट रूप से मुझे दिखाई पड़ रहा था। आप विश्वास कीजिये कि उसका अस्तित्व भी होने और न होने के बीच में लटका हुआ था।

उसका चेहरा, जैसा कि मैं कह चुका हूँ अत्यन्त पीला था। इस पर उसकी नाक, आँखें और मुँह के चिह्न इतने अस्पष्ट थे कि जान पड़ता था, मानो किसी ने चित्र बनाया है और उसको पानी से धो डाला है। कभी-कभी मेरी ओर देखते वक्त उसके होंठ ऊपर से आते, लेकिन फिर राख में लिपटी हुई चिनगारी की भाँति सो जाते। उसके चेहरे के दूसरे चिह्नों का भी यही हाल था। आँखें गँदले पानी की दो बड़ी-बड़ी बूँदें थीं, जिसपर उनकी छिदरी पलकें झुकी थीं। बाल काले थे, मगर उनकी स्याही जले हुये कागज की भाँति थी, जिसमें भूसलापन भी होता है। करीब से देखने से उसकी नाक का सही नक्शा मालूम हो सकता था, लेकिन दूर से देखने पर वह बिलकुल चिपटी सी मालूम होती थी। क्योंकि जैसा मैं इससे पहिले कह चुका हूँ उसके चेहरे के चिह्न बहुत अस्पष्ट थे।

उसका कद साधारण लोगों जैसा था। यानी न छोटा, न बड़ा। अलबत्ता जब वह एक खास ढंग से, यानी अपनी कमर की हड्डी को ढीला छोड़ कर, खड़ा

वह जोश, जो बातें करते समय उसमें पैदा हो गया था, एक दम ठंडा पड़ गया, और उसने धीरे स्वर में कहा—'आपका कहना बिल्कुल ठीक है, मगर क्या पता है कि आपसे फिर कभी भेंट हो ?"

इस पर मैंने कहा—'इसमें सन्देह नहीं, बम्बई बहुत बड़ा शहर है, लेकिन हमारी एक नहीं, बहुत सी भेंटें हो सकती हैं। मैं एक बेकार आदमी हूँ, यानी कहानी लेखक शाम को नित्य इसी समय, बशर्ते कि मैं बिमार न हो जाऊँ, आप मुझे सदा इसी जगह पर पायेंगे। यहाँ असंख्य लड़कियाँ घूमने आती हैं और मैं इसलिये आता हूँ कि अपने आप को किसी के प्रेम जाल में फँसा सकूँ। प्रेम कोई बुरी चीज़ नहीं है।"

"प्रेम प्रेम !" उसने इसके आगे कुछ कहना चाहा, मगर न कह सका और जलती हुई रस्सी की तरह आखिरी बल खा कर चुप हो गया।

मैंने हवा में उससे प्रेम की चर्चा की थी। वास्तव में उस समय वायु मण्डल इतना मनोहर था कि अगर मैं किसी युवती पर आसक्त हो जाता, तो मुझे अफ़सोस न होता। जब दोनों वक्त आपस में मिल रहे हों, धुँधले अंधकार में बिजली के लट्टुओं की पंक्तियाँ आँखें झपकाना शुरू कर दें, हवा में नमी पैदा हो जाय और वातावरण का समय हो जाय, तो किसी अजनबी स्त्री के पास होने की ज़रूरत महसूस हुआ करता ही है।

खुदा जाने, उसने किस कहानी के विषय मुझसे पूछा था। मुझे अपनी सब कहानियाँ याद नहीं और ख़ास तौर से वे तो बिल्कुल याद नहीं, जो रोमांटिक हैं। मैं अपने जीवन में बहुत कम स्त्रियों से मिला हूँ। वे कहानियाँ, जो मैंने स्त्रियों के विषय में लिखी हैं, या तो किसी आवश्यकतावश लिखी गई हैं, या सिर्फ दिमाग़ी ऐयाशी के लिये। चूँकि मेरी ऐसी कहानियों में वास्तविकता नहीं है इसलिये मैंने कभी उनके बारे में ग़ौर नहीं किया। एक विशेष वर्ग की स्त्रियाँ मेरी नज़र से गुज़री हैं और उनके सम्बन्ध में मैंने चन्द कहानियाँ लिखी हैं, मगर वे रोमांटिक नहीं हैं। उसने कहानी का ज़िक्र किया था, वह अवश्य ही कोई घटिया दर्जे की कहानी थी, जो मैंने अपनी चन्द भावनाओं की प्यास बुझाने के लिये लिखी होगी, लेकिन मैंने तो अपनी कहानी शुरू कर दी है।

हाँ, तो जब वह 'प्रेम' कह कर चुप हो गया, तो मेरे मन में इच्छा उत्पन्न हुई कि प्रेम के विषय में कुछ और कहूँ, अतः मैंने कहना शुरू किया—' प्रेम की यों तो बहुत सी क़िस्में, जो हमारे बाप दादा बयान कर गये हैं, हैं, मगर

है। उसके झूठ में इतनी सचाई थी, यानी उसने इतनी सचाई के साथ झूठ कहा था कि उसके अनुभव का तराज़ू ज़रा सा भी न हिला था। ख़ैर! इस क़िस्म की छोड़िये। ऐसी बारीकियाँ अगर मैं आप को बताने लगूँ, तो पन्ने के पन्ने काले पड़ जायेंगे। और कहानी बहुत नीरस रह जायेगी।

थोड़ी सी ही बातचीत के बाद मैंने उसको राह पर लगा लिया और एक और सिगरट पेश करके मैंने समुद्र के चित्ताकर्षक दृश्य की बात छेड़ दी। चूँकि मैं कहानी लेखक हूँ इसलिये मैंने इस दिलचस्प ढंग से उसे समुद्र, जहाज़ो बन्दर और वहाँ आने जाने वाले दर्शकों के बारे में चन्द बातें सुनाईं कि दूसरी सिगरट पाने पर भी उसके गले में खरखराहट पैदा न हुई। उसने मेरा नाम पूछा। जब मैंने बताया, तो वह उठ खड़ा हुआ और कहने लगा—

"आप आप हैं? आपकी कई कहानियाँ मैं पढ़ चुका हूँ। मुझे मालूम न था कि आप ही हैं। मुझे आप से मिल कर बड़ी ख़ुशी हुई है—सचमुच बड़ी ख़ुशी हुई है!"

मैंने उसको धन्यवाद देना चाहा मगर उसने अपनी बात शुरू कर दी— 'हाँ ख़ूब याद आया, अभी हाल ही में आपकी एक कहानी मैंने पढ़ी है शीर्षक भूल गया हूँ उसमें आपने एक लड़की पेश की है जो किसी पुरुष से प्रेम करती थी। मगर वह पुरुष उसे धोखा दे गया। उसी लड़की से एक और पुरुष प्रेम करता था जो कहानी सुनाता है। जब उसको लड़की की विपत्ति का पता चलता है, तो वह उससे मिलता है और उससे कहता है— 'ज़िन्दा रहो उन चन्द घड़ियों की याद में अपने जीवन की नींव खड़ी करो जो तुमने उसके प्रेम में बिताई हैं। उस सुख की स्मृति में जियो, जो तुमने चन्द वर्षों के लिये प्राप्त किया था, मुझे असली शब्द याद नहीं रहे, लेकिन मैं पूछता हूँ, क्या ऐसा सम्भव है? सम्भव को छोड़िये, आप यह तो बताइये वह आदमी क्या आप तो नहीं थे? माफ़ कीजियेगा—मैं ऐसे सवाल पूछ रहा हूँ जो मुझे नहीं पूछने चाहियें, मगर क्या आप ही ने उससे कोठे पर भेंट की थी और उसकी थकी हुई जवानी को ऊँघता हुए चाँदनी में छोड़ कर नीचे अपने कमरे में सोने के लिये चले आये थे?' यह कहते हुए वह एकदम ठहर गया। 'मगर मुझे ऐसी बातें नहीं पूछनी चाहियें—अपने मन का हाल कौन बताता है!'

इस पर मैंने कहा—"मैं आपको बताऊँगा लेकिन पहिली भेंट में सब कुछ पूछ लेना और सब कुछ बता देना अच्छा नहीं लगता। आप का क्या ख़याल है?"

मुझे अपनी बात बड़ी अच्छी लग रही थी और मैं चाहता था कि कोई मेरी बातें सुनता चला जाय। अतएव मैंने फिर से कहना शुरू किया—"तो मैं यह कह रहा था कि कुछ आदमी भी प्रेम के मामले में बाँझ होते हैं, यानी उनके मन में प्रेम करने की इच्छा तो मौजूद होती है, लेकिन उनकी यह इच्छा कभी पूरी नहीं होती। मैं समझता हूँ कि इस बाँझपन का कारण मानसिक दोष है। आपका क्या विचार है ?"

उसका रंग और भी पीला पड़ गया, जैसे उसने प्रेत देखा हो। यह परिवर्तन उसके अन्दर इतनी जल्दी हुआ कि मैंने घबरा कर उससे पूछा—"कुशल तो है, आप बीमार हैं ?"

"नहीं तो, नहीं तो ।" उसकी परेशानी और भी अधिक हो गई।

"मुझे कोई बीमारी वीमारी नहीं है, लेकिन आपने यह कैसे समझ लिया कि मैं बीमार हूँ।"

मैंने जवाब दिया—"इस वक्त आपको जो कोई भी देखेगा, यही कहेगा कि आप बहुत बीमार हैं। आपका रङ्ग भयानक रूप से पीला पड़ रहा है। मेरा विचार है कि आपको घर चला जाना चाहिये। आइये, मैं आपको छोड़ आऊँ।"

"नहीं मैं अपने आप चला जाऊँगा, मगर मैं बीमार नहीं हूँ। कभी कभी मेरे हृदय में मामूली सा दर्द पैदा हो जाया करता है, शायद वह यही हो मैं अभी ठीक हो जाऊँगा। आप अपनी बात जारी रखिये।"

मैं थोड़ी देर चुप रहा। वह इस परिस्थिति में नहीं था कि मेरी बात ध्यानपूर्वक सुन सकता। लेकिन जब उसने आग्रह किया, तो मैंने कहना शुरू किया—"मैं आप से पूछ रहा था कि उन लोगों के विषय में आपका क्या विचार है, जो प्रेम करने के मामले में बाँझ होते हैं। मैं ऐसे आदमियों के भाव और उनकी आन्तरिक मन स्थिति का अनुमान नहीं कर सकता। मगर जब उस बाँझ स्त्री की कल्पना करता हूँ जो केवल एक बेटा या बेटी के लिये कामना करती है, भगवान् के सामने गिड़गिड़ाती है, जब उसे वहाँ से कुछ नहीं मिलता, तो टोने टुटके में वह अपना मनोरथ ढूँढती है, श्मशानों से राख लाती है, कई कई रातें जाग कर साधुओं के बताये हुये मन्त्र जपती है, मनौतियाँ मानती है, चढ़ावे चढ़ाती है तो मैं सोचता हूँ कि उस मनुष्य की भी यही दशा होती होगी, जो प्रेम के मामले में बाँझ हो, ऐसे लोग सचमुच सहानुभूति के

मैं समझता हूँ कि प्रेम चाहे गुलज़ार में पैदा हो या साइबेरिया के बर्फ़ीले मैदान में, जाड़ों में पैदा हो या गर्मियों में, अमीर के दिल में पैदा हो या ग़रीब के दिल में, प्रेम रूपवान् करे या कुरूप बदचलन करे या नेकचलन, प्रेम प्रेम ही रहता है, इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। जिस तरह बच्चे पैदा होने का क़ानून सदा से एक जैसा चला आ रहा है, इसी तरह प्रेम का जन्म भी एक ही तरह होता है। यह दूसरी बात है कि शहज़ादा बेगम महलों में पैदा करें और राजकुमारी जंगल में। गुलाम मुहम्मद के हृदय में अग्नि प्रेम उत्पन्न कर दे और अशोक कुमार के हृदय में एक रानी। जिस तरह कोई बच्चे समय से पहिले पैदा होते हैं और कमज़ोर रहते हैं उसी तरह वह प्रेम भी दुर्बल रहता है, जो समय से पहिले जन्म ले। कभी कभी बच्चे बड़ी तकलीफ़ से पैदा होते हैं कभी कभी प्रेम भी बड़ा कष्ट दे कर पैदा होता है। जिस तरह स्त्रियों का गर्भ गिर जाता है, उसी तरह प्रेम भी गिर जाता है। कभी-कभी बाँझपन भी हो जाता है। इधर भी आपको कई ऐसे आदमी दिखाई देंगे, जो प्रेम करने के मामले में बाँझ हैं, इसका यह मतलब नहीं कि प्रेम करने की इच्छा ही उनके हृदय से सदा के लिए मिट जाती है या उनके मन में वह भाव ही नहीं रहता। नहीं, यह इच्छा उनके मन में मौजूद होती है, मगर वह इस योग्य ही नहीं रहते कि प्रेम कर सकें। जिस तरह स्त्री अपने शारीरिक दोष के कारण बच्चे पैदा करने के योग्य नहीं रहती, उसी प्रकार ये लोग अपने मानसिक दोषों के कारण किसी के हृदय में प्रेम पैदा करने की शक्ति नहीं रखते। प्रेम का गर्भपात भी हो सकता है।"

मुझे अपनी बातचीत दिलचस्प मालूम हो रही थी। अब मैं उसकी ओर बिना देखे बेख़बर हुये चला जा रहा था। मगर जब मैंने उसकी ओर देखा, तो मुझे जान पड़ा कि वह दूर सागर के उस पार क्षितिज को देख रहा है और अपने विचारों में खोया हुआ है। मैं चुप हो गया, लेकिन मेरे मौन ने उसको मेरी ओर आकर्षित न किया।

अब ज़ोर से किसी मोटर का हॉर्न बजा, तो वह चौंका और सावधान हो कर कहने लगा—"जी आपने बिलकुल ठीक कहा है!"

मेरे मन में आया कि मैं उससे पूछूँ—"मैंने क्या ठीक कहा है?—इसको छोड़िये, आप यह बताइये कि मैंने कहा क्या है?" लेकिन मैं चुप रहा और उसको अवसर दिया कि वह अपने बोझिल विचार दिमाग़ से झटक दे।

वह कुछ देर सोचता रहा, इसके बाद उसने फिर कहा—"आपने बिलकुल ठीक कहा है, लेकिन, ख़ैर, छोड़िये इस क़िस्से को।"

दिखाई दिया । मुझे उसका नाम मालूम नहीं था, इसलिये मैं उसे पुकार न सका । लेकिन जब उसने मुझे देख लिया, तो उसकी निगाहें स्थिर हो गईं, मानो उसे वह चीज़ मिल गई है, जिसको वह खोज रहा था ।

कोई बेंच ख़ाली नहीं थी, इसलिये मैंने उससे कहा—"आप से बहुत दिनों के बाद भेंट हुई । चलिये, सामने रेस्तराँ में बैठें । यहाँ कोई बेंच ख़ाली नहीं है ।"

उसने शिष्टाचार की दो चार बातें कीं और मेरे साथ हो लिया । चन्द गज़ चलने के बाद हम दोनों रेस्तराँ की बेंत की बड़ी बड़ी कुर्सियों पर बैठ गये । चाय का आर्डर दे कर मैंने उसकी ओर सिगरेट का टिन बढ़ा दिया । संयोग की बात है कि मैंने उसी दिन दस रुपये दे कर डाक्टर अरोलकर से सलाह ली थी और उसने मुझसे कहा था कि अच्छा तो तुम सिगरेट पीना ही छोड़ दो और अगर तुम ऐसा नहीं कर सकते, तो अच्छे सिगरेट पिया करो । उदाहरणार्थ पाँच सौ पचपन, अतएव मैंने डाक्टर के कहने के अनुसार यह टिन उसी दिन शाम को ख़रीदा था । उसने डिब्बे की ओर ध्यान से देखा, फिर मेरी ओर दृष्टि उठाई । कुछ कहना चाहा, मगर चुप रहा ।

मैं हँस पड़ा—"आप यह न समझियेगा कि मैंने आप के कहने पर यह सिगरेट पीना शुरू किया है । संयोग की बात है कि आज मुझे भी डाक्टर अरोलकर के पास जाना पड़ा । कुछ दिनों से मेरे सीने में दर्द हो रहा है, अत उसने कहा कि यह सिगरेट पिया करो, लेकिन बहुत कम "

मैंने यह कहते हुये उसकी ओर देखा और ख़्याल किया कि उसको मेरी ये बातें अप्रिय लगी हैं । अत मैंने तुरन्त अपनी जेब से वह नुस्ख़ा निकाला, जो डाक्टर अरोलकर ने मुझे लिख कर दिया था । यह काग़ज़ मैंने उसके सामने मेज़ पर रख दिया—"यह इबारत मुझसे पढ़ी तो नहीं जाती, मगर ऐसा मालूम होता है कि डाक्टर साहब ने विटामिन का सारा ख़ानदान इस काग़ज़ पर जमा कर दिया है ।"

इस काग़ज़ को, जिस पर उभरे हुए अक्षरों में डाक्टर अरोलकर का नाम और पता छपा था, और तारीख़ भी लिखी हुई थी उसने चोर निगाहों से देखा और वह व्याकुलता जो उसके चेहरे पर पैदा हो गई थी, तुरन्त दूर हो गई । अतएव उसने मुस्करा कर कहा—"क्या कारण है कि अक्सर लिखने वालों के अन्दर विटामिन ख़त्म हो जाते हैं ?"

पाप है। मुझे बच्चों पर उतनी दया नहीं आती, जितनी इन लोगों पर आती है।"

उसकी आँखों में आँसू आ गये और वह थूक निगल कर सहसा उठ खड़ा हुआ और दूसरी तरफ मुँह करके कहने लगा— "ओह बहुत देर हो गई! मुझे ज़रूरी काम से जाना था। यहाँ बातों में कितना समय कट गया।"

मैं भी उठ खड़ा हुआ। वह पलटा और जल्दी से मेरा हाथ दबा कर, लेकिन बिना मेरी ओर देखे, उसने 'अच्छा विदा' कहा और चल दिया।

× × ×

दूसरी बार फिर हमारी भेंट अपोलो बन्दर पर हुई। मैं भूलने का आदी नहीं हूँ। मगर उन दिनों नित्य संध्या समय अपोलो बन्दर पर जाना मेरा नित्य कर्म हो गया था। एक महीने बाद जब मुझे आगरे के एक कवि ने एक लम्बा चौड़ा पत्र लिखा जिसमें उसने बड़े लच्छेदार ढंग से अपोलो बन्दर और वहाँ जमा होने वाली परियों का ज़िक्र किया और मुझे इस दृष्टि से बहुत भाग्यवान् कहा कि मैं बम्बई में हूँ, तो अपोलो बन्दर से मेरी दिलचस्पी सदा के लिये मर गई। अब जब कभी कोई मुझे अपोलो बन्दर जाने को कहता है, तो मुझे आगरे के कवि का पत्र याद आ जाता है और मेरा जी मतलाने लगता है। लेकिन मैं उस समय की बात कह रहा हूँ जब यह पत्र मुझे न मिला था। और मैं नित्य शाम को अपोलो बन्दर जा कर उस बेंच पर बैठा करता था, जिसके दूसरी ओर कई आदमी अपनी बाबा से अपनी खोपड़िया की मरम्मत कराते रहते थे।

दिन पूरी तरह ढल चुका था और उजियाले का कोई चिह्न भी बाक़ी न रहा था। लेकिन अक्टूबर की गर्मी में कमी न हुई थी। हवा चल रही थी लेकिन थके हुये मुसाफ़िर की तरह। सैर करने वालों की भीड़ अधिक थी। मेरे पीछे मोटरें ही मोटरें खड़ी थीं। बेंच भी सब ठसा-ठस भरे थे। मैं जहाँ बैठा था, वहाँ दो बकवादी—एक गुजराती और एक पारसी न जाने कब के जमे हुये थे। वे दोनों गुजराती बोलते थे, मगर विभिन्न ढंग से। पारसी की आवाज़ में दो स्वर थे। कभी वह बारीक स्वर में बात करता था और कभी मोटे स्वर में। जब दोनों तेज़ी से बोलना शुरू कर देते तो ऐसा लगता, मानो तोता मैना की लड़ाई हो रही है।

मैं उनकी कभी समाप्त न होने वाली बातों से तंग आ कर उठा और टहलने के लिये ताजमहल होटल की रुख किया ही था कि सामने से मुझे वह आता

"सहानुभूति !" उसकी आँखों में आँसू भर आये—"मुझे किसी की सहानुभूति की आवश्यकता नहीं—इसलिये कि सहानुभूति उसे वापस नहीं ला सकती—उस स्त्री को मौत की गहराइयों से निकाल कर मेरे हवाले नहीं कर सकती, जिससे मुझे प्रेम था ! आपने प्रेम नहीं किया—मुझे विश्वास है कि आपने प्रेम नहीं किया। इसलिये कि उसकी असफलता ने आपके हृदय पर कोई दाग नहीं छोड़ा मेरी तरफ देखिये।"

यह कह कर उसने खुद अपने आपको देखा—"कोई जगह ऐसी न मिलेगी जहाँ मेरे प्रेम के चिह्न मौजूद न हों। मेरा अस्तित्व स्वयं उस प्रेम की टूटी हुई इमारत का मलबा है। मैं आपको यह दास्तान कैसे सुनाऊँ ? और फिर क्यों सुनाऊँ ? क्योंकि आप उसको समझ ही नहीं सकेंगे। किसीसे यह कह देना कि मेरी माँ मर गई है आपके दिल पर वह असर पैदा नहीं कर सकता, जो माँ की मृत्यु ने बेटे पर किया हो। मेरी प्रेम कहानी आपको—किसीको भी बिलकुल साधारण मालूम होगी, मगर मुझ पर जो प्रभाव उसने डाला है, उसे कोई भी अनुभव नहीं कर सकता। इसलिये कि प्रेम मैंने किया है और सब कुछ सिर्फ मुझ पर बीता है।"

यह कह कर वह चुप हो गया। उसके गले में कुछ खराश पैदा हो गई थी, क्योंकि वह बार बार थूक निगलने की चेष्टा कर रहा था।

"क्या वह आपको धोखा दे गई ?" मैंने उससे पूछा—"या और कुछ परिस्थिति थी ?"

"धोखा वह धोखा दे ही नहीं सकती थी। ईश्वर के लिये धोखा न कहिये। वह स्त्री नहीं, देवी थी। मगर बुरा हो इस मृत्यु का, वह हमें प्रसन्न न देख सकी और उसे सदा के लिये अपने परों में समेट कर ले गई आह ! आपने मेरे हृदय के घाव को हरा कर दिया है ! सुनिये सुनिये, मैं आपको इस करुण कहानी का कुछ हिस्सा सुनाता हूँ—

"वह एक बड़े और अमीर घराने की लड़की थी। जिस ज़माने में उसकी और मेरी पहिली भेंट हुई मैं अपने बाप-दादा की सारी जायदाद राग रंग में बरबाद कर चुका था। मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं थी। अपना देश छोड़ कर लखनऊ चला आया। चूँकि मेरे पास अपनी मोटर रहा करती थी, इसलिये सिर्फ मोटर चलाने का काम जानता था। अतएव मैंने इसी को अपना पेशा का निश्चय किया। पहिली नौकरी मुझे एक डिप्टी साहब के यहाँ मिली। उनकी वह एकलौती लड़की थी " यह कहते कहते वह अपने विचारों

कह कर वह खड़ा हो गया और मेरे कमरे में टहलने की कोशिश करने लगा। क्योंकि इस छोटी सी जगह में जहाँ कुछ कुर्सियाँ मेज़ और चारपाई वगैरह सब कुछ पड़ा था, टहलने के लिये कोई जगह नहीं था मेज़ के पास उसे रुकना पड़ा। साथी का चित्र बार बार गहरी दृष्टि से उसने देखा और कहा—
"उसमें और इसमें कितना भेद है मगर उसके चेहरे पर ऐसा उदासपन नहीं थी। उसकी आँखें बड़ी थीं, मगर इन आँखों की तरह उनमें शरारत नहीं थी। वे आँखें विलासमय थीं—ऐसी आँखें जो दुःखदायी हैं और समझती भी हैं"
यह कहते हुये उसने एक लम्बी साँस ली और कुर्सी पर बैठ गया और कहा—
'मृत्यु बिल्कुल समय में न जाने क्यों आती है। ख़ासतौर पर उस समय जब कि वह जवानी में आये मैं समझता हूँ कि ईश्वर के दरबार में एक और शक्ति भी है जो बड़ी ईर्ष्यालु है, जो किसी का सुख नहीं देखना चाहती मगर छोड़िये इस ज़िक्र को!"

मैंने उससे कहा—'नहीं नहीं, आप सुनाते जाइये। लेकिन आप ऐसा उचित समझें तो। सच पूछिए तो मैं यह समझ रहा था कि आपने कभी प्रेम किया ही न होगा।'

"यह आपने कैसे समझ लिया कि मैंने कभी प्रेम किया ही नहीं? और अभी अभी तो आप कह रहे थे कि मेरा जीवन ऐसी कई घटनाओं से पूर्ण होगा।' यह कहते हुए उसने मेरी ओर प्रश्न सूचक दृष्टि से देखा। 'मैंने अगर प्रेम किया नहीं, तो दुःख मेरे हृदय में कहाँ से उत्पन्न हो गया? मैंने अगर प्रेम नहीं किया, तो मेरे जीवन में यह रोग कहाँ से चिमट गया है? मैं उदास क्यों रहता हूँ? मुझे अपने आपका होश क्यों नहीं है? मैं दिन ब दिन मोम की भाँति पिघल क्यों रहा हूँ?"

प्रकट में यह सब प्रश्न वह मुझसे कर रहा था, मगर वास्तव में वह सब कुछ अपने आप ही से पूछ रहा था।

मैंने कहा—'मैं झूठ बोला था कि आपके जीवन में ऐसी कई घटनायें होंगी। मगर आप भी तो झूठ बोले थे कि मैं उदास नहीं हूँ और मुझे कोई रोग नहीं है। किसी के दिल का हाल जानना आसान बात नहीं है। आपकी उदासी के और बहुत से कारण हो सकते हैं, मगर जब तक मुझे आप खुद न बतायें मैं किसी नतीजे पर कैसे पहुँच सकता हूँ? इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप सचमुच दिन-ब-दिन कमज़ोर होते जा रहे हैं। आपको अवश्य ही बड़ा दुःख पहुँचा है और और मुझे आपसे सहानुभूति है।'

"सहानुभूति !" उसकी आँखों में आँसू भर आये—"मुझे किसी की सहानुभूति की आवश्यकता नहीं—इसलिये कि सहानुभूति उसे वापस नहीं ला सकती—उस स्त्री को मौत की गहराइयों से निकाल कर मेरे हवाले नहीं कर सकती, जिससे मुझे प्रेम था। आपने प्रेम नहीं किया—मुझे विश्वास है कि आपने प्रेम नहीं किया। इसलिये कि उसकी असफलता ने आपके हृदय पर कोई दाग नहीं छोड़ा मेरी तरफ देखिये।"

यह कह कर उसने खुद अपने आपको देखा—"कोई नगर ऐसी न मिलेगी जहाँ मेरे प्रेम के चिह्न मौजूद न हों। मेरा अस्तित्व स्वयं उस प्रेम की टूटी हुई इमारत का मलवा है। मैं आपको यह दास्तान कैसे सुनाऊँ? और फिर क्या सुनाऊँ? क्योंकि आप उसको समझ ही नहीं सकेंगे। किसीसे यह कह देना कि मेरी माँ मर गई है आपके दिल पर वह असर पैदा नहीं कर सकता, जो माँ की मृत्यु ने बेटे पर किया हो। मेरी प्रेम कहानी आपको— किसीको भी बिलकुल साधारण मालूम होगा, मगर मुझ पर जो प्रभाव उसने डाला है, उसे कोई भी अनुभव नहीं कर सकता। इसलिये कि प्रेम मैंने किया है और सब कुछ सिर्फ मुझा पर बीता है।"

यह कह कर वह चुप हो गया। उसके गले में कड़वाहट पैदा हो गई थी, क्योंकि वह बार बार थूक निगलने की चेष्टा कर रहा था।

"क्या वह आपको धोखा दे गई?" मैंने उससे पूछा—"या और कुछ परिस्थिति थी?"

"धोखा वह धोखा दे ही नहीं सकती थी। ईश्वर के लिये धोखा न कहिये। वह स्त्री नहीं, देवी थी। मगर बुरा हो इस मृत्यु का, वह हमें प्रसन्न न देख सकी और उसे सदा के लिये अपने परों में समेट कर ले गई आह! आपने मेरे हृदय के घाव को हरा कर दिया है! सुनिये सुनिये, मैं आपको इस करुण कहानी का कुछ हिस्सा सुनाता हूँ—

"वह एक बड़े और अमीर घराने की लड़की थी। जिस ज़माने में उसकी और मेरी पहिली भेंट हुई मैं अपने बाप-दादा की सारी जायदाद राग रंग में बरबाद कर चुका था। मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं थी। अपना देश छोड़ कर मैं लखनऊ चला आया। चूँकि मेरे पास अपनी मोटर रहा करती थी, इसलिये मैं सिर्फ़ मोटर चलाने का काम जानता था। अतएव मैंने इसी को अपना पेशा बनाने का निश्चय किया। पहिली नौकरी मुझे एक डिप्टी साहब के यहाँ मिली। उनकी वह एकलौती लड़की थी " यह कहते कहते वह अपने विचारों

में खो गया और एकाएक चुप हो गया। मैं भी चुप रहा।

थोड़ी देर के बाद वह चौंका और कहने लगा—"मैं क्या कह रहा था?"

"आप डिप्टी साहब के यहाँ नौकर हो गये।"

"यह उन्हीं डिप्टी साहब की इकलौती लड़की थी। नित्य प्रति सवेरे नौ बजे मैं ज़ुहरा को मोटर में स्कूल ले जाया करता था। वह पर्दा करती थी। मगर मोटर ड्राइवर से कोई कब तक बच सकता है? मैंने उसे दूसरे ही दिन देख लिया। वह सिर्फ सुन्दर ही नहीं थी बल्कि उसमें एक विशेषता भी थी। वह गम्भीर प्रकृति की लड़की थी। उसकी माता की मौत ने उसके चेहरे पर एक खास रंज पैदा कर दिया था। वह ... वह ... मैं क्या कहूँ वह क्या थी! मेरे पास शब्द नहीं हैं कि मैं उसके रूप और प्रकृति का वर्णन कर सकूँ।'

बहुत देर तक वह अपनी ज़ुहरा के गुणों का बखान करता रहा। इस बीच में उसने कई बार उसका चित्र खींचने का बहुत यत्न किया, मगर वह असफल रहा। ऐसा मालूम पड़ता था कि उसके मस्तिष्क में आवश्यकता से अधिक विचार जमा हो गये हैं। कभी कभी बातें करते करते उसका चेहरा तमतमा उठता, लेकिन फिर उदासी छा जाती और आहों में बातें करना शुरू कर देता। वह कहानी बहुत धीरे धीरे सुना रहा था, जैसे खुद भी आनन्द ले रहा हो। टुकड़े टुकड़े जोड़ कर उसने अपनी सारी कहानी पूरी की जिसका सारांश यह था —

ज़ुहरा से उसे अत्यधिक प्रेम हो गया। कुछ दिन तो मौका पा कर उसके दर्शन करने और तरह तरह के मन्सूबे बाँधने में बीत गये मगर जब गम्भीरता पूर्वक उसने इस प्रेम पर विचार किया, तो अपने को ज़ुहरा से बहुत दूर पाया। एक मोटर ड्राइवर अपने स्वामी की लड़की से कैसे प्रेम कर सकता था? अब जब इस कटु सत्य का अनुभव उसके मन में पैदा हुआ, तो वह दुखी रहने लगा। लेकिन एक दिन बड़े साहस से काम लिया। काग़ज़ के एक पुर्जे पर उसने ज़ुहरा को चन्द पंक्तियाँ लिखीं। वह पंक्तियाँ मुझे याद हैं—

'ज़ुहरा! मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि मैं तुम्हारा नौकर हूँ, तुम्हारे पिता मुझे तीस रुपया मासिक देते हैं मगर मैं तुम से प्रेम करता हूँ। मैं क्या करूँ, क्या न करूँ, मेरी समझ में नहीं आता।'

ये पंक्तियाँ काग़ज़ पर लिख कर उसने उस काग़ज़ को उसकी एक किताब में रख दिया।

दूसरे दिन जब वह उसे मोटर में ले गया, तो उसके हाथ काँप रहे थे। दिल कई बार उसकी पकड़ से बाहर हो गया। मगर परमात्मा ने कुशल की

और कोई घटना न हुई। उस दिन उसकी विचित्र हालत रही। शाम को वह ज़ुहरा को स्कूल से वापस ला रहा था, तो रास्ते में उस लड़की ने उसे मोटर रोकने के लिये कहा। उसने जब मोटर रोक ली, तो ज़ुहरा ने बड़ी गम्भीरता के साथ उससे कहा—'देखो, नईम! भविष्य में तुम ऐसी हरकत कभी न करना। मैंने अभी तक अब्बा जान से तुम्हारे उस पत्र का ज़िक्र नहीं किया, जो तुम ने मेरी किताब में रख दिया था। लेकिन अगर तुम ने ऐसी हरकत फिर की, तो मुझे शिकायत करने के लिये विवश हो जाना पड़ेगा। समझे, चलो, अब मोटर चलाओ।'

इस वार्तालाप के बाद उसने बहुत कोशिश की कि डिप्टी साहब की नौकरी छोड़ दे और ज़ुहरा के प्रेम को अपने हृदय से हमेशा के लिये मिटा दे। मगर वह सफल न हो सका। एक महीना इस कशमकश में बीत गया। एक दिन फिर उसने हिम्मत से काम लेकर पत्र लिखा और उसको एक पुस्तक में रख कर अपने भाग्य के निर्णय की प्रतीक्षा करने लगा। उसे विश्वास था कि दूसरे दिन सुबह उसे नौकरी से जवाब दे दिया जायगा। मगर ऐसा न हुआ। शाम को स्कूल से लौटते हुये ज़ुहरा ने उससे बात की और कहा—'अगर तुम्हें अपनी इज़्ज़त का ख्याल नहीं, तो कम से-कम मेरी इज़्ज़त का तो कुछ ख़याल होना चाहिये।' यह उसने एक बार फिर कुछ इस गम्भीरता के साथ कहा कि उसकी समस्त आशायें नष्ट हो गई और उसने निश्चय कर लिया कि वह नौकरी छोड़ देगा और हमेशा के लिये लखनऊ छोड़ कर चला जायगा। महीने के अन्त में नौकरी छोड़ने से पहिले उसने अपनी कोठरी में, लालटेन के मद्धिम प्रकाश में ज़ुहरा को अन्तिम पत्र लिखा। इसमें उसने अत्यन्त करुण स्वर में लिखा—'ज़ुहरा! मैंने बहुत कोशिश की कि तुम्हारे कहने के अनुसार चल सकूँ, मगर हृदय पर मेरा अधिकार नहीं है। यह मेरा अन्तिम पत्र है, कल शाम को मैं लखनऊ छोड़ दूँगा। इसलिये तुम्हें अपने पिता से कुछ कहने की ज़रूरत नहीं। तुम्हारा मौन मेरे भाग्य का निर्णय कर देगा। मगर यह ख़याल न रखना कि तुम से दूर रह कर मैं तुम से प्रेम नहीं करूँगा। मैं जहाँ कहीं भी रहूँगा, मेरा दिल तुम्हारे चरणों में होगा। मैं सदा उन दिनों को याद करता रहूँगा, जब मैं मोटर को केवल इसलिये धीरे धीरे चलाता था कि तुम्हें धक्का न लगे। मैं इसके अतिरिक्त और तुम्हारे लिये कर ही क्या सकता था?'

यह पत्र भी उसने मौक़ा पा कर उसकी किताब में रख दिया। सुबह को ज़ुहरा ने स्कूल जाते हुये उससे कोई बात न की, शाम को भी रास्ते में उसने

कुछ न कहा। अब वह बिलकुल निराश हो कर अपनी कोठरी में चला आया। जो थोड़ा-बहुत असबाब उसके पास था, बाँध कर उसने एक ओर रख दिया और लालटेन की धुंधली रोशनी में चारपाई पर बैठ कर सोचने लगा कि ज़ुहरा और उसके बीच में कितना अन्तर है!

वह अत्यधिक दुखी था। वह अपनी स्थिति से अच्छी तरह परिचित था। उसे इस बात का अनुभव था कि वह एक निम्न श्रेणी का नौकर है और अमीर घराने की लड़की से प्रेम करने का अधिकार नहीं रखता। लेकिन इस पर भी वह कभी-कभी सोचता था कि अगर वह उससे प्रेम करता है, तो इसमें उसका क्या दोष? और फिर उसका प्रेम धन्धा तो नहीं! वह इसी उधेड़-बुन में था कि आधी रात के करीब उसकी कोठरी का दरवाज़ा किसी ने खटखटाया। उसका हृदय धक् से रह गया। लेकिन फिर उसने सोचा कि मालूम होता है, उसके घर में कोई एकाएक बीमार पड़ गया हो और वह उससे सहायता लेने के लिये आया हो। लेकिन जब उसने दरवाज़ा खोला तो ज़ुहरा सामने खड़ी थी—जी हाँ, ज़ुहरा! दिसम्बर की सर्दी में वह बिना शाल के उसके सामने खड़ी थी। उसकी ज़ुबान गूँगी हो गई। उसकी समझ में नहीं आता था क्या कहे। कुछ क्षण इसी प्रकार की निस्तब्धता में बीत गये, आख़िर ज़ुहरा के होंठ खुले और उसने थरथराते हुये स्वर में कहा—'नईम! मैं तुम्हारे पास आई हूँ। बताओ अब तुम क्या चाहते हो? लेकिन इससे पहले कि मैं अन्दर में प्रवेश करूँ मैं तुम से कुछ सवाल पूछना चाहती हूँ।'

नईम चुप रहा। लेकिन ज़ुहरा उससे सवाल पूछने लगी—क्या तुम सचमुच मुझसे प्रेम करते हो?

नईम को मानो ठेस सी लगी। उसका चेहरा तमतमा उठा—ज़ुहरा तुम ऐसा सवाल पूछ रही हो जिसका जवाब अगर मैं दूँ तो मेरे प्रेम का अपमान होगा। मैं तुम से पूछता हूँ, क्या मैं प्रेम नहीं करता?

ज़ुहरा ने इस सवाल का जवाब न दिया और थोड़ी देर तक चुप रह कर अपना दूसरा सवाल किया—मेरे बाप के पास काफ़ी धन है, मगर मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं। जो कुछ मेरा कहा जाता है, वह मेरा नहीं, उनका है। क्या तुम मुझे बिना धन के भी वैसा ही प्रिय समझोगे?'

नईम बहुत भावुक आदमी था। अतः इस सवाल ने भी उसके भावों को चोट पहुँचाई। अत्यन्त दुखी स्वर में उसने ज़ुहरा से कहा—'ज़ुहरा ख़ुदा के लिये मुझसे ऐसे सवाल न पूछो जिनके जवाब इतने साधारण हो चुके हैं कि

तुम्हें थर्ड-क्लास की प्रेम कहानियों और उपन्यासों में मिल सकते हैं ।'

ज़ुहरा उसकी कोठरी में दाख़िल हो गई और उसकी चारपाई पर बैठ कर कहने लगी—'मैं तुम्हारी हूँ और सदा तुम्हारी रहूँगी।'

ज़ुहरा ने अपनी बात पूरी की। दोनों लखनऊ छोड़ कर देहली चले आये और विवाह करके एक छोटे से घर में रहने लगे। डिप्टी साहब ढूँढते ढूँढते उसके यहाँ पहुँच गये। नईम को नौकरी मिल गई थी, इसलिये वह घर में नहीं था। डिप्टी साहब ने ज़ुहरा को बहुत बुरा भला कहा। उनकी सारी इज़्ज़त मिट्टी में मिल गई थी। वे चाहते थे कि ज़ुहरा नईम को छोड़ दे और जो कुछ हो चुका है, उसे भूल जाय। वह नईम को दो तीन हज़ार रुपया देने को भी तैयार थे। मगर उन्हें असफल लौटना पड़ा। इसलिये कि ज़ुहरा नईम को किसी मूल्य पर भी छोड़ने के लिये तैयार न हुई। उसने अपने पिता से कहा—'अब्बा जान, मैं नईम के साथ बहुत ख़ुश हूँ। आप उससे अच्छा शौहर मेरे लिये कभी न ढूँढ सकते। मैं और वह आपसे कुछ नहीं माँगते। अगर आप हमें आशीर्वाद दे सकें, तो हम आपके कृतज्ञ होंगे।'

डिप्टी साहब ने जब यह बात सुनी तो बड़े रुष्ट हुये। उन्होंने नईम को क़ैद करा देने की धमकी भी दी। मगर ज़ुहरा ने साफ़ साफ़ कह दिया—'अब्बा जान, इसमें नईम का क्या क़ुसूर है? सच तो यह है कि हम दोनों बेक़सूर हैं। हाँ, हम दोनों एक-दूसरे से प्रेम ज़रूर करते हैं। और वह मेरा शौहर है यह कोई क़सूर नहीं। मैं नाबालिग़ नहीं हूँ।'

डिप्टी साहब बुद्धिमान् थे। तुरन्त समझ गये कि जब उनकी बेटी ही राज़ी है, तो नईम पर दोष कैसे लग सकता है? अतः वे ज़ुहरा को हमेशा के लिये छोड़ कर चले गये। लेकिन कुछ दिनों बाद डिप्टी साहब ने विभिन्न लोगों द्वारा नईम पर दबाव डालने और उसको रुपये पैसे का लालच देने की कोशिश की, मगर फिर भी असफल रहे।

दोनों का जीवन बड़े मज़े में बीत रहा था। यद्यपि नईम की आमदनी बहुत कम थी और ज़ुहरा को, जो लाड़ प्यार में पली थी, शरीर पर खुरदरे कपड़े पहिनने पड़ते थे, और अपने हाथ से सब काम करने पड़ते थे। मगर वह प्रसन्न थी। वह अपने को एक नई दुनिया में पाती थी, जहाँ क़दम-क़दम पर नईम के प्रेम के नये नये पहलू उस पर प्रकट होते थे। वह बहुत सुखी थी—अत्यन्त सुखी। और नईम भी बहुत ख़ुश था। लेकिन एक दिन भगवान् ने कुछ ऐसा किया कि ज़ुहरा के सीने में एक दर्द उठा और इसके पहिले कि नईम

उसके लिए कुछ कर भी सके, वह इस संसार से विदा हो गई। और नईम का संसार सदा के लिये दुःखमय और अंधकारमय कर गई।

यह कहानी उसने रुक रुक कर और स्वयं गला दबा कर प्रायः रोते रोते हमें सुनाई। जब वह अपने दिल का दाग दिखा चुका तो उसका चेहरा [illegible] वाला पवन के समान सा उठा। जैसे उसके अन्दर भार भार किसी ने खून खालिस कर दिया हो। लेकिन उसकी आँखों में आँसू थे और उसका गला सूख गया था।

कहानी जब समाप्त हो गई तो वह फुर्ती से उठ खड़ा हुआ और उसे बहुत अच्छा है और कहने लगा—'मैंने बड़ी भूल की कि अपनी प्रेम-कहानी आपको सुना दी। मैं बड़ा मूर्ख था। जुहरा का चर्चा केवल मुझ तक सीमित रहना चाहिये था। लेकिन लेकिन"

उसका स्वर भारी हो गया—"मैं जीवित हूँ और वह वह" वह इससे आगे कुछ न कह सका और जल्दी से मेरा हाथ दबा कर कमरे से बाहर चला गया।

× × ×

नईम से फिर मेरी मुलाकात न हुई। मैं उसकी [illegible] पर कई बार उसकी तलाश में गया मगर वह न मिला। छः या सात महीने के बाद उसका एक पत्र मुझे मिला। जिसको मैं उद्धृत करता हूँ—

"प्रिय——जी!

आपको याद होगा मैंने आप के मकान पर अपनी प्रेम-कहानी आप को सुनाई था। वह केवल कहानी थी—एक झूठी कहानी—न कोई जुहरा है और न कोई नईम, मैं स्वयं मौजूद तो हूँ। मगर वह नईम नहीं हूँ जिसे जुहरा से प्रेम था। आपने एक बार कहा था कि कुछ लोग जन्म से ही होते हैं, जो प्रेम के मामले में बाँझ होते हैं। मैं भी उन अभागे पुरुषों में से एक हूँ जिसकी पूरी जवानी अपना मन बहलाने में बीत गई। जुहरा से नईम का प्रेम एक मन बहलाव था। और जुहरा की मृत्यु मैं अभी तक नहीं समझ सका कि मैंने उसे क्यों मार दिया। बहुत सम्भव है कि इसमें भी मेरे जीवन की स्याही का हाथ हो।

मुझे मालूम नहीं, आपने मेरी कहानी झूठी समझी या सच्ची? लेकिन मैं आप को एक विचित्र बात बताता हूँ कि मैंने यानी उस झूठी कहानी के बदले

वाले ने, यह बिल्कुल सच्ची समझी। सौ प्रतिशत सच! मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मैंने सचमुच ज़ुहरा से प्रेम किया है और वह वास्तव में मर चुकी है। आप को यह सुन कर और भी आश्चर्य होगा कि जैसे जैसे समय गुज़रता गया, इस कहानी के अन्दर वास्तविकता अधिक होती गई और ज़ुहरा की आवाज़, उसकी हँसी भी मेरे कानों में गूँजने लगी। मैं उसकी साँस की गर्मी तक महसूस करने लगा। कहानी का प्रत्येक कण जीवित हो गया और मैंने और मैंने यों अपनी क़ब्र अपने हाथों से खोदी

ज़ुहरा कहानी न थी, मगर मैं तो कहानी हूँ। वह मर चुकी है, इस लिये मुझे भी मर जाना चाहिये। यह पत्र आप को मेरी मृत्यु हो जाने के बाद मिलेगा। विदा। ज़ुहरा मुझे ज़रूर मिलेगी कहाँ? यह मुझे मालूम नहीं।

मैंने ये कुछ पंक्तियाँ आप को सिर्फ़ इसलिये लिख दी हैं कि आप कहानी लेखक हैं। अगर इससे आप कहानी तैयार कर लें, तो आप को सात आठ रुपये मिल जायँगे, क्योंकि एक बार आप ने कहा था कि एक कहानी का पुरस्कार आप को सात से दस रुपये तक मिल जाया करता है। यह मेरी भेंट होगी। अच्छा विदा!

आप का—नईम”

× × ×

नईम ने अपने लिये ज़ुहरा बनाई और मर गया—मैंने अपने लिये इस कहानी की रचना की है और मैं जीवित हूँ—यह मेरी ज़्यादती है।

—श्री सआदत हसन 'मण्टो'

ढाई-सेर आटा

पुरवाई चल रही थी। भोला को बाइ ने पकड़ रखा था और वह आठ दस रोज़ से काम पर जाने के क़ाबिल नहीं रहा था। दो तीन रोज़ तक, जो दो चार पैसे जमा थे वे ख़र्च हुए, फिर उधार पर काम चलता रहा। दो चार दिन बाद बनिया भी टाले हवाले करने लगा। लाचार हो कर भोला एक दिन टाँग में ज़रा आराम पा कर सुबह तड़के टोकरी ले कर मज़दूरी करने बाज़ार गया। वह कई कारीगरों के साथ काम कर चुका था उन्हीं में से एक ने, जिसका काम लगा था, उसको अपने साथ ले लिया। दिन भर ईंट ढोता रहा। शाम को साढ़े चार आने पैसे मिले, जिन्हें ले कर वह घर चला। रास्ते में एक आना बनिये के उधार का दिया, एक आना घर के किराये के लिये रख लिया और एक पैसा दूसरे दिन के चबेने के लिये बचा लिया। बाक़ी नौ पैसों में से एक का आलू, एक का बाजरे का आटा, पाँच पैसे के चावल, एक पैसे की दाल और एक की लकड़ी ले कर एक लम्बी सी गली में घुस गया, जो आगे जा कर इतनी तंग हो गई थी कि वहाँ अभी से अँधेरा छा गया था। इस गली में बराबर-बराबर कई कोठरियाँ बनी हुई थीं, जिनमें से दो एक से धुआँ निकल रहा था, जो ठंडा हो कर गली में घूम रहा था और गली के अंधकार को और बढ़ा रहा था। भोला की घरवाली—मुन्ना, जिससे बाक़ायदा विवाह तो नहीं हुआ था, मगर पन्द्रह वर्ष से दोनों के सम्बन्ध पति पत्नी ही-जैसे थे दो लड़कियाँ और सबसे छोटे दो लड़के जाड़े के मारे पास पास बैठे भोला की प्रतीक्षा कर रहे थे। भोला को देखते ही सब ने प्रसन्न हो कर उसे घेर लिया। वह थका हुआ बहुत था, पोटली रख कर ज़मीन पर बिछे हुए टाट पर लगते हुए बोला—"सब लेता आया हूँ।"

मुन्ना चूल्हे के पास गई जो उसी कोठरी में एक तरफ़ बना हुआ था। आग सुलगाई गई और दाल चावल पकने को चढ़ा दिये गये। लड़कियाँ और लड़के चूल्हे को घेर कर बैठ गये और दाल की 'खदर पदर' सुनने लगे। उन दोनों के लिये इससे सुन्दर कोई गाना हो ही नहीं सकता था।

कोठरी में सील और मैले कपड़ों की दुर्गन्ध फैली हुई थी। अब वहाँ धुआँ भी भरने लगा, मगर सब का ध्यान चूल्हे पर था। लड़के भूख से परेशान थे।

दाल चावल जल्दी से पक कर तैयार हो जाए, इसलिये वे बहुत-सी लकड़ी चूल्हे में लगा देते थे। यह देख कर उनकी माँ डाँटती—"दुष्टो, कल खाना कैसे पकेगा?"

बड़ी लड़की चूल्हे के पास बराबर शरीर झुलसाये आ रही थी और थोड़ी-थोड़ी देर बाद लकड़ी की डोई से दाल और चावल निकाल कर चुटकी से मल कर देखती भी जाती थी। लड़के यह देख उससे पूछते—"कितनी देर है?"

"बस ज़रा सी कसर है।"

यही एक उत्तर आध घंटे तक दोहराया जाता रहा। मौला एक पुरानी दरी ओढ़े, जिसमें सैकड़ों छेद थे खाट पर चुपचाप पड़ा था। थोड़ी देर बाद वह भी बोला—"ऊँह! नींद भी सुसुरी नहीं आती।"

इतने में किसी के रोने और चीखने की आवाज़ आने लगी। कोई मज़दूर था, ताड़ी पी कर आया था और जो अपनी स्त्री को मार पीट रहा था और स्त्री चिल्ला रही थी। जब शोर अधिक हुआ तो मुन्नी बोली—"इन लोगों के यहाँ रोज़ यही रहता है। न जाने कैसे कमाते हैं!"

मौला जैसे उसकी बात सुन कर चौंक पड़ा और बोला—"ऊँह! चावल नहीं पका अब तक?'

मुन्नी ने देखा, चावल गल गये थे। अस्तु हाँडी उतार ली गई। हाँडी ढक्कन से बन्द थी, मगर उबाल में हाँडी की किनारों पर कुछ चावल आ गये थे। छोटा लड़का बन्नू ने उससे दो चावल पोंछ कर खा लिये, यह देख उससे छोटा लड़का मुन्नू तुरन्त बोल उठा—'हूँह! मैं भी।' और यह कह उसने और अधिक चावल पोंछ लिये। इस पर दोनों में झगड़ा हो होने वाला था कि मुन्नी ने दोनों को डपटा—'अभागो को ज़रा सब्र नहीं! मैं कहती हूँ "

थोड़ी देर लड़के मुन्नी की बात पूरी होने की प्रतीक्षा करते रहे और जब वह कुछ न बोली तो फिर खाने की ओर आकर्षित हुए। अब सब को दाल पकने का बड़ी बेचैनी से इन्तज़ार था। आख़िर एक लड़की पुकारी—"अम्माँ अब उतार दो।'

माँ ने दाल देखी तो वह थोड़ी गल गई थी। अब अधिक प्रतीक्षा कौन करता, उसने दाल घोंट कर नमक डाला और हाँडी उतार ली। फिर तामचीनी की तीन प्लेटें, जिनकी चीनी क़रीब-क़रीब बिल्कुल उड़ चुकी थी, और एक मिट्टी की रकाबी सामने रखी। पहिले एक बड़ी प्लेट में चावल निकाले और उस पर ...ला के सामने रख दिया। मौला

खाने लगा। अब सब बच्चे टकटकी बाँध कर मुन्नी के हाथों की हरकत देख रहे थे। उसने मिट्टी की रकाबी में चावल दाल निकाल कर दोनों लड़कियों को दी और फिर तामचीनी की दोनों प्लेटों में बराबर-बराबर चावल निकाल और उस पर दाल डाल कर दोनों लड़कों को दिये।

बच्चू ने एक बार अपनी प्लेट देखी और फिर बहिनों की रकाबी घूर कर बोला—"अम्माँ उसकी प्लेट में इतना और हमारी में इतना!"

मुन्नी ने ज़रा सी दाल और उसकी प्लेट में डाल दी।

मुन्नू यह देख अपनी प्लेट उसके सामने बढ़ा कर बोला—"अम्माँ हमें भी।

माँ ने दो चार चावल उसकी प्लेट में भी डाल दिये और बाकी चावलों की हाँडी में दाल डाल कर खुद खाने लगी। अभी चूल्हे में कुछ कोयले बाकी थे जिनके हल्के प्रकाश में इन लोगों के चेहरे और चबाते हुये मुँह दिखाई पड़ रहे थे। चारों बच्चे खाते जाते थे और प्लेट की तरफ देख कर अन्दाज़ा करते जाते थे कि अभी इतना और बाकी है, इतना और बाकी है। अन्त में मुन्नू अपनी प्लेट पोंछ कर बोला—"बस खा चुके।"

मौला भी चावल समाप्त कर चुका और बोला—"चावलों में खुदा ने बड़ी बरकत दी है, ज़रा-स खा लिया और पेट भर गया और रोटी सा सेर भर आटे की हो, तो कुछ नहीं और दो सेर आटे का हो, तो कुछ नहीं।'

बच्चू पानी पी कर बोला—"अम्माँ, सुबह क्या पकेगा?"

मुन्नी—'मैं कहती हूँ इन लोगों का मन कभी नहीं भरता, कभी नहीं भरता। अभी खा चुका है और अभी से पूछ रहा है कि कल क्या पकेगा?'

मुन्नी ने पलंग के नीचे से, जो कोठरी के आधे का चौथाई हिस्सा घेरे हुए था, एक पानदान निकाला, जिसका पेंदा घिस गया था और सब कुल्हियाँ एक दूसरी पर रखी हुई थीं। यह पानदान मुन्नी की माँ का था और उसे बहुत प्रिय था। वह सोचा करती थी कि मैं किसी घर में ऊपर का काम धन्धा करने पर नौकर हो जाऊँगी, तो सब से पहिले इसको ठीक कराऊँगी। उसने एक पान के चार टुकड़े किये एक खुद खाया, एक मौला को दिया और दो दोनों लड़कियों को दिये। इसके बाद कोठरी के बीच में एक पर्दा टाँग दिया गया, जिससे उसके दो भाग हो गये। एक ओर पलंग हो गया और दूसरी ओर टाट का फर्श। पलंग पर मुन्नी और मौला लेट गये। और टाट पर दोनों लड़के लड़कियाँ। जाड़ा तेज़ हो गया था। मौला और मुन्नी ने वही दरी ओढ़ ली

और लड़के लड़कियों में से भी किसी ने मोटी चादर और किसी ने टाट का टुकड़ा दोहरा कर ओढ़ लिया और फिर चिड़ियों के बच्चों की तरह एक-दूसरे से लिपट कर लेट रहे। कोठरी के दरवाजे से ठंडी हवा आ रही थी, इसलिये मौला ने उठ कर द्वार बन्द कर दिया। हवा आनी बन्द हो गई और कोठरी में उमस के कारण गरमी हो गई। थोड़ी देर की निस्तब्धता के बाद मुन्नी बोली—"आज मुंशी जी आए थे और कह गये हैं कि नवाब साहब ने हुक्म दिया है कि जिसपर किराया बाकी हो उसे निकाल दिया जाय।"

मौला—"निकाल देंगे—निकाल देंगे? हुँह! जब सुनो यही। आएँ, निकालें आ कर। हम जाड़ों में बच्चों को ले कर कहाँ जाएँ? हुआ करें वह बड़े आदमी। हम तो नहीं निकलेंगे। कह दो जब किराया जमा हो जायगा, तो दे देंगे। ले कर भाग न जाएँगे। मर जाएँ तो बात दूसरी है, बड़े आये कहीं के निकालने वाले!"

इसके बाद थोड़ी देर के लिये मौन छा गया। फिर मौला बोला—"मुंशी जी के यहाँ की नौकरी का पता चला?"

मुन्नी—"वह कहते हैं कि छोटी लड़की से काम नहीं चलेगा। ऐसी लड़की हो, जो झाड़ू बहारू करे और दो घड़े पानी बहा सके।"

यह कह कर मुन्नी ज़रा रुकी और फिर ज़रा आवाज़ नीची करके बोली—"मैं कहती हूँ सयानी लड़की को कैसे भेज दूँ? इस निगोड़ी के दीदे भी तो हयाई हैं। पानी भरने जाती है, तो ठट्ठे करती है।"

मौला—"आयेगी हरामज़ादी तो अपने से आयेगी, एक चली गई, तो क्या कर लिया, लड़का होती तो चार आने रोज़ कमा के लाती।"

मौला की बड़ी लड़की भाग गई थी और उसका साल भर से कहीं पता नहीं था।

मुन्नी—"करते क्या? निगोड़ी थी ही ऐसी। ऐसी न होती, तो भागती ही क्यों? सब लड़के कब अच्छे निकलते हैं? किसने खा कर माँ बाप को खिलाया है? इधर कमाने लायक हुये उधर चल दिये। भूरे को देखो, ठेला चलाता है, दस आने रोज़ पाता है और सब उड़ा देता है।"

मुन्नी एक ठंडी साँस भर कर चुप हो गई और फिर निस्तब्धता छा गई, जिसे कभी-कभी इन लोगों की साँसों की आवाज़ भंग कर देती थी। अभी आठ ही बजे थे और बाज़ार में चहल पहल थी, मगर यहाँ [illegible] गया था।

(२)

सुबह जब भोला की आँख खुली तो उसने मुन्ना को जागते पाया। वह पाँच मिनट तक पलंग पर बैठा रहा। फिर कराहता हुआ उठा और बोला—"सर्दी के मारे जान निकली जाती है, बदन ऐंठ सकता हो गया। बीड़ी कहाँ है?"

मुन्नी ने उठ कर एक कोने से बीड़ी का बंडल और दियासलाई की डिबिया निकाल कर दी। भोला ने एक बीड़ी सुलगाई और पान खाया। और यहीं जब तक धुआँ में पड़कर खाँसता रहा उसने हाथ से नहीं छुआ। फिर पलंग से उठा और लोटा ले कर बाहर चला गया। पन्द्रह मिनट बाद वहाँ से लौटता हुआ आया और खोंखार कर बोला—"एक बीड़ी और। दूसरा दिन चढ़ आया और धूप का कहीं पता नहीं।"

भोला ने एक बीड़ी और सुलगाई और फिर लाठी उठा कर बीड़ी पीता हुआ बाहर चला गया।

भोला के जाने के दो घण्टे बाद मुन्नी लड़कों और लड़कियों को ले कर बाहर निकली और कोने में कुटा लगा कर टहलने लगी। कुछ दूर पर अन्य मजदूरों की स्त्रियाँ धूप में बैठी बातें कर रही थीं। वह भी जा कर उन्हीं में सम्मिलित हो गई। लड़के और छोटी लड़की आँख बचा कर इधर-उधर हो रहे।

तीन चार घण्टे बाद मुन्नू आया और माँ से कहने लगा—"अम्माँ, भूख लगी है।"

मुन्नी उसी तरह बातों में लीन रही, जैसे यह सुनने की बात ही नहीं थी। थोड़ी देर के बाद बच्चू आया और उसने भी यही शब्द दोहराये, लेकिन उसने अब भी ध्यान नहीं दिया। उस समय वह किसी बड़े घराने की स्त्रियों की चहलपहलों का बड़े उत्साह के साथ चर्चा कर रही थी। इस उत्साह में यह भाव छिपा था कि यद्यपि हम हैं लोग जाति के लेकिन पूछे नहीं हैं। थोड़ी थोड़ी देर बाद एक लड़का या दोनों अपना अपना सवाल लगा देते। इस प्रकार एक घण्टा बीत गया। अब छोटी लड़की भी कहीं से आई और माँ के पास बैठ कर सुबके से बोली—"अम्माँ चलो।"

मुन्नी—"अभी सवेरा है, जरा ठहरो।"

दस मिनट और बीते। अब बच्चू माँ का कंधा पकड़ कर खड़ा हो गया

और रोती आवाज़ में रट लगा दी—"अम्माँ खाना दे, अम्माँ खाना दे, अम्माँ !"

सुखी थोड़ी देर यह रें रें सुनती रही। फिर उसको डाँट दिया। बच्चू यह डाँट सुन कर रोने लगा। अन्त में वह बड़बड़ाती हुई उठी—"मैं कहती हूँ, या ये सब मर जाएँ या मुझ को मौत आ जाए, ज़िन्दगी इनके कारण दूभर हो रही है।"

सुखी ने कोठरी में जा कर आग सुलगाई और बाजरे के आटे की पाँच टिकियाँ पकाईं। दो छाछ और साग पका, उन पर ज़रा ज़रा सा गुड़ रख कर छोटा टिकियाँ लड़कों को दीं और बड़ी एक साथ भी और दो दोनों लड़कियों को दीं। इन लोगों का खाना खाना चार ही मिनट में ख़तम हो गया और फिर सब घूमने चले गए।

शाम को जब मौला मज़दूरी के पैसे लिये लौट रहा था, तो उसकी नज़र गली के कोने पर पड़ी। उसने देखा कि दो ढाई सेर आटा यों ही पड़ा हुआ है। उसने पास जा कर आटा चुटकी से उठा कर देखा कि कहीं उसकी आँखें धोखा तो नहीं खा रही हैं। और जब विश्वास हो गया, तो चकित खड़ा रह गया। मन कहता था उठा ले चलो, मगर एक तो यह डर था कि शायद कोई कुछ कहे और दूसरे यह झिझक कि उसके दूसरे मज़दूर साथी भी पीछे आ रहे होंगे। यदि वे मुझे आटा उठाते देखेंगे, तो क्या कहेंगे। आख़िर आटा उठाने का साहस न हुआ और वह चल पड़ा। मगर हर क़दम पर चाल धीमी होती जाती थी। अन्त में दस बारह क़दम पर आ कर ऐसा भौंचक्का सा खड़ा हो गया, जैसे चौराहे पर पहुँच कर राह भूल गया हो। वह सोच रहा था कि कोई दूसरा मज़दूर इस आटे को उठा लेगा, यह मुझको न मिलेगा और उसको मिल जायगा। क्रमशः यह विचार इतना प्रबल होता गया कि मौला काल्पनिक आटा उठाने वाले मज़दूर को हद से ज़्यादा ईर्ष्या से देखने लगा और यह सोचता हुआ आटे की ओर पलटा—'उँह! कोई हँसेगा तो हँस लेगा, बाल बच्चे तो आटा पा कर ख़ुश होंगे।' अब तो मौला के क़दम ऐसी फ़ुर्ती से उठ रहे थे, जैसे वह किसी डूबते हुए बच्चे को नदी से निकालने जा रहा हो। आटे के पास पहुँच कर वह इतमीनान से बैठ गया, अपना अँगोछा फैलाया और आटा उठाने लगा। साथ साथ बड़बड़ाता भी जाता था—'न जाने कैसे लोग हैं। अनाज इस प्रकार फेंक दिया है कि पैरों के नीचे कुचला जाए और नाली में बह जाए इससे तो अच्छा है कि मुझी ग़रीब खा ले।"

जिस बात का भय था वही हुआ। पाँच छः मज़दूरों की टोली पास से गुज़री, और वे सब यह विचित्र तमाशा देख कर खड़े हो गये।

एक ने कहा—"क्या मिल गया दोस्त मौला ?"

मौला—"कुछ नहीं, ख़राब आटा है। मगर है तो आखिर अनाज, पैरों तले आएगा। मैंने कहा उठा लूँ, मुर्गी बकरी खा लेंगी, तो स्वारथ हो जायगा।'

दूसरा मज़दूर बोला—"अरे, गली का पड़ी हुई चीज़! कहीं टोना-टोटका न हो ?"

पहिला बोला—"उठा ले, मौला, उठा! इसे बकने दे, काम ही आ जायेगा।"

मौला सिर झुकाए अपने कार्य में व्यस्त रहा। वे लोग चल पड़े हुए। कुछ ही दूर पहुँच कर एक मज़दूर ने तान लगाई—

"सौ से बुरा तो एक से बहतर बना दिया!'

दूसरा उसकी तान के साथ ही में बोला—"ग़रीब हैं सही, मगर हम गली का गिरा पड़ा तो नहीं उठाते।"

ये मज़दूर वैसे तो दून की ले रहे थे, पर वास्तव में उनमें से प्रत्येक को मौला के भाग्य पर ईर्ष्या हो रही थी कि उसे इतना आटा यों ही पड़ा मिल गया।

इस आटा का भी विचित्र क़िस्सा है!

(२)

दस बजने के करीब थे, मगर अभी तक खाना तैयार नहीं हुआ था। शौकत मियाँ स्कूल जाने को तैयार हुए थे। उनकी बुआ ने दो चार रोटियाँ जल्दी जल्दी डलवा दीं और चार कबाब तल दिये और जल्दी से सहन पर खाना परोस कर शौकत मियाँ को खाने के लिये आवाज़ दी। शौकत मियाँ एक हाथ में पुस्तकें लिये और एक हाथ से शेरवानी के बटन लगाते हुए खाने के कमरे में घुस गये और बिना हाथ धोये खाना शुरू कर दिया। मगर उन्होंने पहिला [redacted] कौर मुँह में रखा था कि ऐसा मुँह बिगाड़ लिया, जैसे कुनैन खा गये हों। जल्दी से वह कौर पानी के सहारे पेट में पहुँचाया। और फिर रोटी का एक छोटा-सा टुकड़ा तोड़ कर मुँह में रखा, चबाया और फिर मुँह बिगाड़ कर बोले—'फूफीजान! आटा ख़राब है।"

"आटा ख़राब है! क्या ?'

"शायद अकरा गया है।"

फूफी ने भी रोटी का ज़रा-सा टुकड़ा मुँह में रखा और फिर बोलीं—"तुम्हारी बातें! कहाँ अकराया है? रोटियाँ जल्दी पकने में कुछ धुँआँ गई हैं।"

शौकत मियाँ ने कुछ जवाब नहीं दिया। जल्दी से किताबें उठा कर भागते हुए बाहर चले गये।

बेगम साहबा धूप में बैठी कुछ सी रही थीं। पुत्र को इतना जल्दी जाते देख कर बोलीं—"क्या बात है?"

शौकत मियाँ की बुआ बोलीं—"कुछ नहीं, ज़रा रोटियाँ धुँआँ गई।"

बेगम साहबा—"मेरी समझ में नहीं आता कि शौकत मियाँ कब तक फ़ाक़े करके स्कूल जाते रहेंगे। ज़रा मैं तो देखूँ ये रोटियाँ।"

बुआ एक प्लेट में रोटी रख कर सामने लाईं। बेगम साहबा ने ज़रा सा टुकड़ा मुँह में रखा और थूक कर बोलीं—"ये धुँआँ गई हैं? मैं कहती बहन! तुम्हें कब अक़्ल आएगी? अकराया हुआ आटा मेरे बच्चे के सामने रख दिया। जहाँ मेरा ध्यान हटा और दलिद्दरपना होने लगा।"

इस वाक्य का लक्ष्य बुआ थीं। वह बेचारी शौकत मियाँ के बाप की सौतेली बहन थीं। दस बरस हुए विधवा हो गई थीं और उनका या उनकी लड़की का इस घर के सिवा कहीं ठिकाना नहीं था। प्रगट रूप में तो वह एक ग़रीब बहन की भाँति रखी जाती थीं, पर वास्तव में वह एक 'हेडमामा' या नौकरों के इन्चार्ज का काम करती थीं, और हर प्रकार की प्रबन्ध-सम्बन्धी त्रुटियों का उत्तरदायित्व उन्हीं पर था। बेगम साहबा का आक्षेप सुन कर बोलीं—"ए मैंने तो भले की सोचा थी, थोड़ी सदकी में आटा था, मैंने सोचा क्यों पड़ा रहे काम ही आ जाय।"

"यह न हुआ कि देख लेतीं, आटा है कैसा? वह तो रोटी की सूरत से ही मालूम होता है, ऐ शैतान!" उनकी आवाज़ पचीस गज़ का फ़ासला तय करके हुमा कड़क के साथ रसोई घर में पहुँची।

शैतान घबरा कर बोली—"जी, बेगम साहबा, पका रही हूँ।"

"सब आटा नाले में फेंक दे, बड़े गगरे से आटा निकाल कर पका।"

शौकत मियाँ की फूफी इस आज्ञा का पालन कराने दौड़ीं और रसोई घर आ कर दबदबे से —"नाली में फेंक दो, नाली में फेंक दो। सब है

पर में काम होती है, तो उसका आदर नहीं होता, अनाज बड़ी चीज़ है बहन, बड़ा काम !"

शैतान—"हाँ, पूँछ गूँजा आया भाटा, सब मेहमान खा जाय—"

"तुम फैंका फेंको नहीं, खेता आओ बकरी का खिला देना। हाँ, और देखो, मटका में अभी दो ढाई सेर आटा और होगा दो आने दस पैसे का माल है, वह भी खेता जाओ मैं फेंक्या का क्या करूँगा ?"

शैतान आग ले तो आना चाहता था, मगर यह देख कर कि फुलाजान मेरा बढ़िया मकसद के नाम कर एहसान करना चाहती हैं, बोला—"हाँ, आटा ले जा कर किसी काम में डाल दूँगा। पैसे हाथ न पड़े, तब यह है किस काम का ?"

फुलाजान ने इस डर से अधिक बातें नहीं कीं कि कहीं शैतान सचमुच आटा ले जाने से इनकार न कर दे। और इस प्रकार ज़रा-सा एहसान करने का जो अवसर मिल रहा है, वह भी हाथ से चला जाय। वह तुरन्त कोठरी में जा कर अपने एक मैले दुपट्टे में आटा बाँध लाई और बोली—"दुपट्टे का ख़्याल रखना। फटने न पाये और शाम को अपने साथ ही लेता आना।"

शैतान ने आटे की तरफ़ एक बार देखा और फिर अपने काम में लग गई। जब घर जाने लगा तो पकी हुई रोटियाँ, सूखा हुक्का, आग और आटे की पोटली सब सामान ले कर घर आई। शैतान की पत्नी लड़की ने, जो पति से झगड़ा हो जाने के कारण माँ ही के पास स्थायी रूप से रहती थी, इस सब सामान के विषय में पूछा। शैतान ने सारा विवरण सुनाया तो उसने रोटी चखा और बोला—'खाने लायक नहीं है, आटा कड़वा हो गया है।'

"बकरी खा लेगी।"

"उसका दूध न घट जायेगा ?"

शैतान ने उठ कर रोटियाँ बकरी के पास डाल दीं। उसने एक रोटी तो खा ली मगर फिर मुँह फेर लिया। उन लोगों ने बहुत कुछ पुचकारा पुचकारा मगर वह उस ओर आकर्षित न हुई। और होती भी कैसे ? वह तो बेगम के यहाँ के बचे-खुचे मज़ेदार भोजन पर पली थी। इस समय भी उसी से पेट भरा था।

अब शैतान सोचने लगा कि आटे का उपयोग कैसे हो ? बेटी ने राय दी कि दुलारे (अपने पुत्र) का नज़र उतार कर चौराहे पर फेंक दो।

यह प्रस्ताव उपयुक्त था। अगर आटा चार सेर तक होता, तो यह प्रस्ताव

अवश्य ही स्वीकृत हो जाता, मगर एक दम ढाई सेर आटा इस प्रकार फेंकने पर ख़ैरातन तैयार न हुई।

रात को जब ख़ैरातन काम पर से लौटी और खा पी कर निश्चिन्त हो कर लेटी, तो फिर यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि आटे का क्या हो? मित्रों और सम्बन्धियों का सूचा दोहराई गई, मगर काम का कोई आदमी समझ में न आया। प्रात काल एक भिखारी ने आवाज़ लगाई। ख़ैरातन ने मौक़ा ग़नीमत जाना। पाव भर आटा निकाल कर भीख देने लगी। भिखारी था शहर का, आटा देख कर बोला—"माई, फ़क़ीर को ख़राब चीज़ न दिया कर। भगवान भला करे!"

वह यह कहता हुआ चला गया और ख़ैरातन बड़बड़ाती हुई अन्दर आई—"मुए, मोटे फ़क़ीर! भीख माँगने चले हैं।"

अब फिर वही समस्या उपस्थित हुई कि आटे का क्या हो? तीसरे पहर एक स्त्री दो बच्चों को साथ लिये हुए उनके घर आई और अपनी कथा इस प्रकार सुनाई कि मैं क्वेटे की रहने वाली हूँ, भूकम्प ने मेरा सब कुछ नष्ट कर दिया। भरे कई बाग़ थे, बड़े बड़े मकान थे, कई नौकर चाकर थे, पति थे, और कई बच्चे थे, पर अब कुछ नहीं रहा, भूकम्प ने सब कुछ छीन लिया और अब मैं दुखियारी इन बच्चों के साथ दर दर मारी मारी फिर रही हूँ।"

ख़ैरातन और उसकी बेटी को उस बेचारी पर बड़ा तरस आया और सब आटा एकदम उठा कर उन लोगों को दे दिया। वह स्त्री ग़रीब आदमी के घर से इतना आटा पा कर बड़ी चकित हुई। मगर थी वह भी स्त्री—इन स्त्रियों की सहानुभूति पर उसे सन्देह हुआ। ज़रा दूर गली में जा कर उसने पोटली खोली। आटा देखा और जब वास्तविकता का ज्ञान हुआ, तो खूब बड़बड़ाई, कोसने लगी और आटा गली में डाल कर चलती हुई। उसे भला ख़राब आटे का क्या परवाह? उसकी जेब में आज की आमदनी के पैसे खनक रहे थे।

(४)

सन्ध्या समय मुन्नी मौला की प्रतीक्षा कर रही थी और मन्नू उसके कंधे से लगा रें रें कर रहा था—"अम्माँ भूख लगी है।"

मुन्नी—"दोपहर को तुम्हें और मुन्नू को बराबर की टिकियाँ दी थीं, देखो; वह कहाँ रोता है?"

मुन्नू एक लाल पतंग का फटा काग़ज़ सिर पर लपेटे एक लकड़ी हाथ में

लिए सिपाही बना टहल रहा था। यह सुन कर बोला—"अम्माँ, हमें कुछ और भी काम देना तब भी हम न रोएँगे, अच्छा !"

मुन्ना—"अब बना बन्नू ! चल, मुन्नू कितना अच्छा लगता है !"

बन्नू शर्म कर चुप हो गया, मगर फिर थोड़ा दूर जाकर पैसा का रें रें करने लगा। यह सुन मुन्नी बोली—"रो नहीं, इन्हों, वह आते होंगे और तुम्हारे लिये चाय लाते होंगे, अच्छा !'

इतने में भोला आटे की पोटली लिये हुए आँगन में घुसा। मुन्नी ने पोटली खोली और देख कर आश्चर्य से बोली—"गेहूँ का आटा कहाँ मिला ?"

जब से भोला बीमार था, इन लोगों ने गेहूँ की रोटी नहीं खाई थी, आज आटा देख सब प्रसन्न हो गए।

भोला—'मिल गया। देखो कितना है ?'

मुन्नी दौड़ कर कहीं से तराजू माँग लाई और आटा तौलने के लिये बैठी। एक सेर तौला और उसको एक कपड़े में रख दिया फिर दूसरी बार तराजू भरा, परिणाम देखने को सब अत्यन्त उत्सुक थे, उसी प्रकार जैसे लड़के स्कूल में परीक्षा का नतीजा सुनने को उत्सुक होते हैं। आखिर मुन्ना बोला—'यह सवा दो सेर से कम न होगा, कितना अच्छा आटा है' अब बोलती, देख, इसके घुन घुन के पहिले निकाल डाला, घुन बहुत है।"

एक लड़की ने दौड़ कर एक मैली लालटेन उठा कर जलाई और फिर दोनों बैठ कर घुन चुनने लगीं, दोनों छोटे लड़के शोर मचाने लगे—"गेहूँ का आटा, गेहूँ का आटा !"

मुन्नी थोड़ी देर चुप रही, फिर चिल्ला कर बोली—"चुप रहो अभागो ! कान फाड़े डालते हो !"

इसके बाद निस्तब्धता छा गई। थोड़ी देर तक छोटी लड़की के खाँसने या बड़ी लड़की के शरीर खुजलाने का खर्र-खर्र के अतिरिक्त कोई शब्द न सुनाई दिया। पाँच मिनट बाद मुन्ना ने हुक्म सुनाया—'बस, अब साफ़ हो गया, आधा आटा कल के लिये रख दो।"

भोला—"अब रखोगी क्या, सब आज ही पका लो जी भर के खा लें।"

दोनों लड़के—"हाँ हाँ मेरी अम्माँ !'

मुन्नी आटा गूँधने लगी। आटे में अब भी घुन था। गूँधते समय उसे कुछ संदेह हुआ, उसने आटा निकाल कर चक्खा। फिर मुँह बिचका कर बोली—"नमक डाल कर पकाने वाला है, दो पैसे का तेल ले आओ, तो आज

पूरियाँ पकें। दो पैसे के आलू भी ले आओ, और ज़रा बफ़ाती के यहाँ से कड़ाह भी ले आओ।"

दोनों लड़के झट उठ कर कड़ाही लेने दौड़ गए, उनके पीछे छोटी लड़की भी चली। भोला बनिये के यहाँ सामान लेने गया। मुन्नी ने आटा गूँध कर रखा, इतने में लड़की कड़ाई ले कर आ पहुँची। मुन्नी ने कोठरी के बाहर निकल कर कड़ाई माँजी। भोला लकड़ी और तेल वगैरह ले कर आया, लड़कियों ने आग जलाई, सब लड़के चूल्हा घेर कर बैठे, कड़ाई चढ़ाई गई। मुन्नी ने एक मिट्टी की रकाबी में एक बड़ी सी रोटी बढ़ाई, कड़ाई में दो बूँद तेल टपकाया जब वह कड़कड़ाने लगा, तो उसने रोटी डाल दी। वह धुआँ सा बोली, तेल की गंध कोठरी में फैल गई। लड़के खाँसने लगे। पूरियाँ पकते देख कर सब के चेहरों पर प्रसन्नता छा गई।

मुन्नू बोला—"आहा! कैसी अच्छी महक है!"

मुन्नी ने रोटी दूसरी ओर पलटी। मुन्नू बोला—"कैसी लाल-लाल है? अम्माँ यह हम खायेंगे।"

'बच्चू—नहीं अम्माँ, हम! हम!'"

मुन्नी ने पूरी उतारी फिर कड़ाई में दो बूँदें टपकाईं और दूसरी पूरी डाल दी। इसी प्रकार उसने एक घंटे में धीमी धीमी आँच में सब पूरियाँ निकाल लीं। खाने में देर हो गई थी, मगर यह विलम्ब खुशी के कारण किसी को महसूस न हुआ। पूरियाँ पका कर मुन्नी चिल्लाई—"अरे आलू लाओ, आलू! किसीने अभी तक काट ही नहीं, मैं कहता हूँ ये छोकरियाँ किसी काम की नहीं हैं, देखो तो, सब खड़ी तमाशा देख रही हैं।"

जल्दी जल्दी आलू के पतले पतले कतले काटे गए और फिर कड़ाह में पकने के लिये चढ़ा दिये गये। यह विलम्ब बेशक खल गया। सब चुप बैठे रहे। इस निस्तब्धता को कभी-कभी खाँसी की आवाज़ भंग कर देती थी। आख़िर आलू तैयार हो गये, तैयार क्या हो गये ज़रा मुलायम पड़ गये। मुन्नी ने मिट्टी की रकाबियाँ निकालीं और सब में दो दो पूरियाँ और उन पर थोड़े थोड़े आलू रख कर सब के सामने बढ़ा दिये। अब जो इन लोगों ने देखा, तो बच्चू सो रहा था।

मुन्नू ने उसे झँझोड़ते हुए कहा—"बच्चू उठ! उठ देख, पूरियाँ तैयार हो गईं।"

बच्चू आँखें मलता हुआ उठा और रोने के लिए पूरा मुँह खोल कर एक

चीख़ लगानी चाही, पर सहसा उसकी दृष्टि पूरियों पर पड़ गई, जिसको देख कर रोना भूल गया। सब हँस-हँस कर पूरियाँ खाने लगे।

मुन्नू—"अहा हा हा ! कितनी मज़े की हैं !"

छोटी लड़की—"अम्माँ, सालन होता ?"

बड़ी लड़की—"हाँ, और पुलाव भी अच्छा न होता क्या !"

फिर निस्तब्धता छा गई। ये लोग खूब मजे ले ले कर खा रहे थे, जिससे अच्छा खासा शोर पैदा हो गया था। जब पूरियाँ ख़त्म हो गईं, तो मुन्नी ने आधा आधी सब को और दीं और फिर स्वयं भी लीं। मौला ने आटा मिलने का किस्सा सुनाया। इस पर मुन्नी बोली—'यह भी खुदा की देन है। मैं बच्चू से कह रही थी कि आज अच्छी चीज़ खाने होंगे।'

बच्चू—"अम्माँ हम गरम गरम पूरी वाले बनेंगे और खूब पूरियाँ खाएँगे।"

मुन्नू—"हम सिपाही बनेंगे, सब को पकड़ पकड़ कर जेलखाने भेजा करेंगे।"

बच्चू—"हम तुम को पूरियाँ नहीं देंगे।"

मुन्नू—"हम तुम को खूब पीटेंगे और पकड़ कर थाने में बन्द कर देंगे।"

बच्चू—"हम हम तुम को ।"

बच्चू की समझ में नहीं आया कि क्या कहे। उसने मुन्नू को मुँह चिढ़ा दिया। इस पर मुन्नू ने एक घूँसा रसीद किया। मौला ने दोनों को डाँटा—"अभागो आज तो खूब ठूँस-ठूँस कर खाया है। आज तो चुप रहो !"

दोनों चुप हो गये। मौला बोला—"खुदा अब रोज़ पेट भर दे !"

जब ये लोग सोने लगे तो बच्चू बोला—"अम्माँ कहानी कहो।"

"हाँ हाँ, शाहज़ादेवाली।" लड़कियाँ बोलीं।

मुन्नी का मन भी आज प्रसन्न था। वह कहने लगी—"एक था राजा, एक थी रानी"

—हयातुल्ला अन्सारी

मुहल्ला

"मैं क्या परवाह करता हूँ मुहल्ले वालों की !"—मन्ज़ूर ने गुस्से में कहा—"आख़िर यह हमारा अपना मुहल्ला है और एक न एक दिन हमें वहाँ जाना ही होगा।"

जवाब में सुरैया ने सिर झुका दिया और चुपचाप खड़ी रही।

लेकिन यह कहने पर भी वह सुरैया को मुहल्ले में ले जाने में घबराता था। चूँकि वह मुहल्ले की लड़की न थी और चौगान में खेल खेल कर और खिड़की में चौकी पर बैठ कर मुहल्लेवालियों की बातें सुन-सुन कर जवान न हुई थी। मुहल्ले की लड़कियाँ ! गोरे चिट्टे बदनों से भरी हुई चोलियाँ, चोरी चोरी ताकने वाली सादा नज़रें, चढ़े हुए पायच ! मन्ज़ूर ने झुरझुरी ली। उसकी दृष्टि सामने सुरैया पर जा पड़ी, जैसे हवा में एक छोटा, किन्तु रंगदार सा जाला तना हुआ था। आश्चर्य भरी आँखें, पतले और झुके हुए ओंठ, सूनं और उदास सौंदर्य, पतला सा सुराहीदार शरीर मानो किसी ज़र्द बोतल में जान पड़ गई हो या 'मुरक़्क़ा ग़ालिब' की कोई तस्वीर चुपके से निकल कर उसके सामने आ खड़ी हुई हो। हाँ, मुहल्ले की लड़कियों से कितनी भिन्न थी वह ! और फिर शादी में उसने मुहल्लेवालों की रज़ामन्दी लेना तो दूर, उन्हें बुलावा तक न भेजा था। मन्ज़ूर की बहिन ने आ कर घट मँगनी पट ब्याह कर दिया था। यों मुहल्ले में एक नई लड़की ला कर बसाना, पत्नी के चुनाव में उनकी बिल्कुल उपेक्षा करना, मानो वे मुहल्लेवाले ही न हों ! मुहल्लेवालियों के लिये यह एक अनसुनी सी बात थी। इसके अतिरिक्त अपनी सगी चाची, जो मुहल्ले में सब की प्रधान थीं, उनकी बात को इस प्रकार रद्द कर दे ! मुहल्ले में ऐसा कौन व्यक्ति था, जो यह न जानता हो कि चाची बातों-ही बातों में कई बार अपनी बेटी ज़ुबैदा को मन्ज़ूर के नाम कर चुकी थीं। इन्हीं बातों के कारण वह सुरैया को मुहल्ले में ले जाने से घबराता था। लेकिन बेचारा लाचार था। दो महीने की छुट्टी कहाँ बिताता ? इसलिये उन्हें मुहल्ले में आना ही पड़ा और वे दोनों वहाँ आ गये।

मुहल्ले के बीच में एक चौगान था, जिसमें से तीन चार सँकरी अँधेरी गलियाँ बल खाती हुई, इधर-उधर को निकल गई थीं। चौगान के चारों ओर

काली काली झुकी हुई तीन मंज़िली दीवारें घेरा डाले खड़ी थीं। शताब्दियों के बोझ से वे झुक गई थीं और यहाँ वहाँ कई एक जगह से ईंटें निकल आई थीं, लेकिन वह झुकाव और छेद दीर्घ काल से इन दीवारों के अंश हो चुके थे। चौगान में कुछ छोटी छोटी मेहराबदार खिड़कियाँ खुलती थीं, जिनपर मैले से टूटे-फूटे सरकण्डे लटक रहे थे जो शायद किसी समय में चिकें रही हों। चौगान के बीच में एक कुबड़ी कुबड़ी लालटेन झुकी झुकी खड़ी थी और रात को टिमटिमा कर अंधकार को और भी स्पष्ट किया करती। दाईं ओर मुहल्ले की मसजिद का सिलेटी गुम्बद उभरा हुआ था, जो कबूतरों और चमगादड़ों की आवाज़ों को उछाल कर मुहल्ले में फैलाया करता।

दिन के समय मुहल्ले-वालियाँ अपना अपना काम ले कर चौगान में आ बैठतीं। चर्खों की रोयें रोयें में कोई न कोई बात छिड़ जाती। विवाह बीमारी या मौत की बात या कोई पुरानी शिकायत किसी के हृदय के घावों को हरा कर देती। एक हाथ चमका चमका कर कुछ कहती, दूसरी नाक पर अँगुली रख कर सुनती। कोई बीच में बोल उठती। उस समय चर्खों का कर्कश स्वर इन दीवारों से टकरा कर गुम्बद में सोये हुए कबूतरों और चमगादड़ों को जगा देता। वे चीख़ने लगते। चर्खों की मद्धिम गुनगुनाहट में वह कड़े और भयानक स्वर सुन कर यों महसूस होता, मानो किसी निर्जन खण्डहर में ऊँचे ऊँचे लम्बे भूतों की तरह चल फिर रहे हों।

खिड़कियों में चौकियों पर बैठी जवान लड़कियाँ ध्यान से उनकी बातें सुनतीं और कभी-कभी वहीं से किसी न किसी बात पर टोकती रहतीं। चौगान में बच्चे खेलते रहते और थक जाते, तो किसी देहलीज़ पर बैठ कर उनकी बातें सुनते और आपस में कुछ न कुछ कह कर चोरी चोरी उनको चिढ़ाते। कभी कभी किसी मुहल्ले वाले का खँखार सुनाई देता और कोई पुरुष सिर झुकाये दबे पाँव चौगान से निकल जाता। यों ही दिन बीत जाते, साल बीत जाते, चौगान में खेलने वाली लड़कियाँ जवान हो कर खिड़की में चौकी पर जा बैठतीं और मुहल्ले वालों की बातें सुनने लग जातीं। बहुएँ पुरानी हो कर नीचे चौगान में उतर आतीं। लड़के जवान हो कर खँखारना और सिर झुका कर दबे पाँव चलना सीख कर अन्दर घरों में जा बैठते। छोटे छोटे बच्चे घसिट घसिट कर देहलीज़ों से उतर आते और चौगान में आ पहुँचते। उनकी काली काली दीवारों में एक आध झुकाव और पड़ जाता और वह और भी काली हो कर उस कुबड़ी लालटेन को कुछ और अंधी कर देतीं। मसजिद के गुम्बद में रो

नई-नई, कहा आवाज़ें गूँजतीं लेकिन मुहल्ले के जीवन में कोई अन्तर न पड़ता। यों ही दिन बीत जाते, साल बात जाते!

मुहल्लेवालों ने बड़े तपाक से उनका स्वागत किया। चाची ने दौड़ कर देहलीज पर तेल टपकाया और सुरैया को गोद में उठा कर ऊपर ले गईं, और मुहल्ले वालियों ने बढ़ कर उनके चारों ओर घेरा डाल लिया। चौगान में बच्चे शोर मचाने लगे। चाची बोलीं—"बिस्मिल्लाह, दुलहिन अपने घर आई!"

मुहल्ले के नीच जाति के लोग बारी बारी सलाम करने को आये। लेकिन इन बातों के होते हुए भी मन्जूर दो-एक दिन परेशान-सा रहा। फिर धीरे धीरे घर की काली काली दीवारों ने उसके चारों ओर नाच कर, चरखों ने गा गा कर और चौगान की डुबकी लालटेन ने मुस्करा मुस्करा कर न जाने उसके कान में क्या कह दिया। उसकी गर्दन झुक गई और वह अन्दर-बाहर दबे पाँव यों चलने फिरने के लगा, मानो किसी बालक को कोई सलाब मिल गया हो।

सुरैया को तो चाची ने इतना अधिक अपनाया कि वह सहम-सी गई। उसके हर क़दम पर 'बिस्मिल्लाह' और छींक पर 'अलहम्दोलिल्लाह' पड़ती और बात बात पर बोल उठतीं—"क्यों बेटी, ख़ैर तो है, क्या हुआ तुम्हें? शत्रुआ की तबीयत ख़राब है क्या?" या मुहल्लेवालियों को चारों ओर घेरे रहते, कहतीं—"बस है! तुमने बेचारी को घेर कर परेशान कर रखा है। ज़रा हवा तो लगने दो। लड़की की तबीयत अच्छी नहीं। देखो, ज़रा-सा मुँह निकल आया है, सूख कर काँटा हो रही है।" फिर वह ग़ुस्से में हाथ चला कर कहतीं—"तोबा, इन जवान लड़कों का तो कुछ पूछो हो नहीं बस ब्याह करने ही के भूखे होते हैं। देखो तो भाभी, एक ही साल में लड़का को क्या कर दिया है। मुँह हल्दी की तरह पीला हो गया है और चलता है बहिन, तो झटके लगते हैं। अब तो आप आराम से अन्दर बैठा रहता है। न दवा, न दारू, अल्लाह करे मेरी बच्ची को आराम हो जाय, तोबा! माँ का दिल भी कैसा होता है, हाँ! आख़िर मेरे लिये तो अपना ही बेटा है न, और जैसी मेरी ज़ुबैदा, वैसी ही दुल्हिन।"

चाची के मुँह से यह बात सुन कर कई एक ने हाँ में हाँ मिलाई। एक बोली—"बेचारी को चार दिन भी दुल्हिन बन कर बैठना नसीब न हुआ। नर्गिस ने तो चार कलमे पढ़ा कर मुँह साफ़ कर लिया और अपने मियाँ के पास जा बैठी।"

दूसरी कहने लगी—"आज मन्सूर की माँ ज़िन्दा होती, तो देखते कि कैसे चाव से उतारती अपनी बहू को!"

तीसरी ने कहा—"मैं कहती हूँ चाची, बस अपनी ज़ुबैदा की उम्र के बराबर हो गई, पर उसे देखो तो इस 'घर' में है। ज़रा मुझे तो मुँह दिखाने को शर्माती है, लेकिन दुल्हिन..."

चाची बात काट कर बोलीं—"न बहिन, ऐसी बात न कहो। अल्लाह चाहेगा तो बिलकुल राज़ी हो जायेगी। मैं तो सुबह शाम यही दुआयें माँगती हूँ। मन्सूर की बहिन चाहे जाने या न जाने पर मुझे इससे बढ़ कर और कौन प्यारा है? क्यों मामा, तू अपने ईमान से कहियो, है न यही बात!"

सुरैया के लिये यह मुहल्ला, यह काली काली दीवारें और इन औरतों की बातें अभाव सी थीं। उनके झुरमुट में वह और भी परेशान हो जाती और उसके मलिन मुख पर उदासी छा जाती। उस समय उसे देख कर यों महसूस होता, मानो कोई गुप्त बात सर्वसाधारण में प्रकट कर दी गई हो।

मन्सूर ने अन्दर बैठे हुए सब मुहल्ले वालियों—विशेष कर चाची की बातें सुनीं और बहुत प्रसन्न हुआ कि वह सुरैया को अपना रही थीं। चाची तो बिलकुल उस पर जान देती थीं। यद्यपि उसका विचार था कि चाची उससे सीधे मुँह बात भी न करेंगी। आख़िर उन्हें दुःख तो हुआ होगा लेकिन कैसी अच्छी चाची थीं। उन्होंने यह बात जताई ही न थी उसे। मन्सूर दिल ही-दिल में अपने पहले मरहलों पर पछता रहा था। उसका जी चाहता था कि जा कर चाची के पाँव पकड़ आये और उनसे क्षमा माँग ले। उसे सुरैया के विषय में एक विश्वास सा हो गया। यद्यपि इसके अतिरिक्त चाची की बात ने उस पर और कोई असर न किया। बीमारी के बारे में सुन कर वह मुस्करा पड़ा—औरत है न! छोटी-सी बात पर घबरा जाती है। शायद सुरैया सफ़र की परेशानी से उदास सी दिखती हो।

लेकिन इस दिन जब चाची सुरैया के लिये मन्सूर से लड़ीं, तो उसे महसूस होना शुरू हुआ कि सचमुच सुरैया को किसी डाक्टर को दिखाना चाहिये। चाची कहने लगीं—"यह भी कोई ढंग है बेटा कि पराई बेटी को घर ला कर उसकी यह हालत कर दो। उसे देखो तो हल्दी की तरह पीली हो रही है। बस इसीलिये ब्याह कर लाये थे उसे? अपना मतलब निकल गया तो जाये भाड़ में! पर मैं तो ऐसा न होने दूँगी। आख़िर वह भी किसी की बेटी है। उसकी माँ का भी दिल है। उसे कितना दुःख होगा, और फिर न

दवा न दारू ! मेरी अपनी ज़ुबैदा है उसी की उम्र की होगी, किन्तु देखो, तो कैसी जवान निकली है । और इन मुहल्लेवालियों को नहीं जानते तुम ? वे तो पहले ही इस बात को भूखी बैठी हैं । ज़बानें कैंची सी चलती हैं । ख़ुदा न करे, कोई ऐसी वैसी बात हो गई, तो कहेंगी, आख़िर, पराई लड़की था न, इनको क्या पड़ी थी कि उसकी फ़िक्र रखते ? मर गई, चलो छुट्टी हुई, जान छूट गई । पर बेटा, मुझसे तो यह सुना न जायगा । अगर मेरे बेटे हो, तो अब भी चेतो, अभी हाथ से कुछ नहीं गया । हाँ, और उसे इस हालत में काम काज तो न करने दूँगी, सुना तुमने ? मुझे बिरादरी में अपनी नाक नहीं कटवानी है । जब तक वह तन्दुरुस्त नहीं होती, ज़ुबैदा यहाँ आ कर रहेगी । आख़िर तुम्हारी बहिन ही है न ! घर का काम भी कर दिया करेगी और दुलहिन का ख़याल भी रखेगी ।"

उस दिन वह दिन भर बेचैन फिरता रहा । बार बार सुरैया की ओर देखता और जाने क्या सोचता । फिर सुरैया को उठते बैठते देख कर एक ठण्डी सी आह भर कर कहता—"ज़्यादा चलो फिरो नहीं । यहाँ भी आराम न किया तुमने, तो होगा क्या ?"

उस समय सुरैया का उदास चेहरा और भी उदास हो जाता और वह आह भर कर लेट जाती । रात को जब वह सो गई तो मन्ज़ूर उठ कर सहन में फिरता रहा, मानो कुछ खो गया हो । चाँदनी में सुरैया का रंग और भी पीला दिखाई देता और वह बच्चों की तरह चारपाई पर गठरी बनी पड़ी थी । 'जाने क्या हुआ है इसे ?' उसने गौर से देखा और उसे चाची की वह बात याद आ गई —'यह शहर की लड़कियाँ ! बस, देखते रहो इन्हें ! हाथ लगाया और छुई मुई हो गई !' वास्तव में चाची सच कहती थीं । एक ही साल में कितनी कमज़ोर हो गई है, अब क्या होगा ?—किसी विचार पर उसने एक झुरझुरी ली और निगाहें फेर लीं । दूसरी चारपाई पर ज़ुबैदा पड़ी थी । गुलाबी गुलाबी बदन से चारपाई भरी हुई थी । शलवार के पाँयचे चढ़े हुए थे और क़मीज़ का गला खुला था । 'लाहौल विलाकूवत !' कह कर वह और इधर उधर घूमने लगा । 'चाची न होती, तो मुझे इसकी बीमारी का पता ही न चलता ।' उसने सोचा—'मैं भला क्या जानूँ क्या होती हैं इनकी बीमारियाँ ? बेचारी इलाज के बिना ही लोथ है !' उसने खिड़की से नीचे झाँका । चौगान में कोई बुढ़िया सिर पर दिया रख नाच रही थी । चारों ओर काली काली गहरी छायाएँ हाथों में हाथ दिये घूम रही थीं । सुरैया ! सुरैया ! कोई काली सी चीज़ चीख़ चीख़ ... चारों ओर फड़फड़ा रही थी ।

ज़ुबैदा ने आ कर घर का सारा काम सँभाल लिया था। यदि सुरैया उसका हाथ बँटाने के लिए कुछ करने लगती तो वह चट बोल उठती—"न बहिन, अम्मी को मालूम हो गया, तो मैं उसे क्या जवाब दूँगा।" या तो सुरैया सारे दिन लेटी रहती या कभी उकता कर कोठे पर चढ़ जाती। उस समय अचानक ज़ुबैदा को उस आलमारी से कोई बरतन निकालने की ज़रूरत पड़ जाती जिसके निकट मन्जूर कुरसी पर बैठा पढ़ता था। उसे देख कर मन्जूर सोच में पड़ जाता—'कैसा अच्छा स्वास्थ्य है! बस, स्वास्थ्य के सिवा जीवन में और है ही क्या?' फिर उसे ख्याल आता कि वह टकटकी बाँध कर उसे देख रहा है और वह घबरा कर आँखें झुका लेता।

उस समय ज़ुबैदा मुस्करा कर उसकी तरफ़ देखती। उसका पल्लू या उसका हाथ, या बदन का कोई हिस्सा संयोगवश उससे छू जाता। सुगंधि की एक हल्की-सी लपट उसे घेर लेती। ज़ुबैदा तो बरतन ले कर, मुड़ कर, मुस्करा कर चली जाती लेकिन वह देर तक अपने विचारों में खोया रहता या नित्य व्यायाम करने की इच्छा करता। अगर सुरैया आ जाती, तो उसको देख कर उसकी आँखों में दया झलकती और वह मन ही-मन सोचता कि अगर सुरैया का स्वास्थ्य भी अच्छा होता अगर उसका शरीर भी भरा भरा होता! मन्जूर की नज़र में सुरैया के चेहरे-मुहरे एक और ही गोरा-चिट्टा, भरा हुआ शरीर आ जाता। उन पतली पतली बाँहों की जगह दो भरी हुई बाँहें उसकी तरफ़ बढ़तीं। फिर उसकी आँख खुल जाती और वह एक आह भर कर कहता—"सुरैया, तुम ज़्यादा चला फिरा न करो। हाँ, और वह दवाई खाई थी?'

जब से ये मुहल्ले में आये थे, मुहल्लेवालियों को जैसे किसी और बात में दिलचस्पी ही न रही थी। चौगान में बैठ कोई-न-कोई सुरैया की बात छेड़ देती और नहीं तो चाची स्वयं कुछ न कुछ कह देती। और जब चाची आप कोई बात छेड़ दें, तो किसकी मजाल थी कि उनकी हाँ में हाँ न मिलाये या उनकी बात काट कर कोई और बात छेड़े।

वह मन्जूर ही की चाची न थीं, बल्कि सारा मुहल्ला उनको चाची कह कर बुलाता। यहाँ तक कि मुहल्ले के बड़े-बूढ़े भी चाची कहते। कोई झगड़ा हो सुख हो या दुःख हर मामला चाची के सामने पेश किया जाता था। चाची ओंठ पर अँगुली रख कर ग़ौर से सुनती रहतीं और फिर हाथ चला चला कर अपना निर्णय सुनातीं और अन्य सब औरतें चुपचाप बैठी सुनतीं या कोई बीच में बोल कर उनकी हाँ में हाँ मिलाती जाती। बाक़ी रहे मुहल्लेवाले, उन्हें

तो ऐसी बातों से कोई मतलब ही न था। वे समझते थे कि घरों की बातें औरतें ही जानती हैं और औरतों के मामले में बस उनका यही काम था कि रोज़गार कर, सिर झुका लें और दूने पाँव पास से निकल जायँ या कमा कर लायें, तो उनकी झोली में डाल दें या आवश्यकतानुसार लड़ाई में या ब्याह पर किसी कठिनाई के समय उन्हें बुला कर पूछें कि ऐसी परिस्थिति में उन्हें क्या करना चाहिये और उनके बड़े क्या करते थे ?

हाँ, तो चाची की बात को भूठ कहना कोई सरल काम न था और फिर जब चाची स्वयं सुरैया से इतनी दिलचस्पी लेतीं, तो फिर भला, वे कर ही क्या सकती थीं। कई एक का विचार था कि चाची मन्ज़ूर को मुँह तक न लगायेंगी। उससे जो व्यवहार चाची ने किया था, वह किसीसे छिपा हुआ न था। सभी जानते थे कि वह शुरू से ही मन्ज़ूर को अपना भावी दामाद समझती थीं। लेकिन यह होते हुए भी मन्ज़ूर की बहिन ने उसे यों निकाल कर रख दिया, जैसे दूध की मक्खी। इन बातों के होते हुए भी जब वे चाची की बातें सुनतीं और देखतीं कि वह सुरैया के नाम पर बिसिमल्लाह पढ़ती हैं, तो मन ही मन उनकी प्रशंसा करतीं।

"तू नहीं जानती भाभी !" चाची ने रहस्यपूर्ण ढंग से कहा—"ये आजकल के नौजवान भला औरतों की बीमारियों को क्या जानें ? ये तो बस, कधी पट्टी करके टहलना ही जानते हैं। बस, जाने दे तू इस बात को।" लेकिन वह बात को जाने कैसे देतीं ? वह क्या जानती न थीं कि जब चाची 'जाने दे इस बात को' कहें, तो उसे जारी रखना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

भाभी बोलीं—"ले चाची, मर्दों को क्या पड़ा है कि यह जानें ? उनकी बला से एक न सही, दूसरी सही। बीबियों का क्या काल है ?"

"न भाभी यह न कहो !" चाची ने ज़बान ओंठों में दबा कर कहा—"अल्लाह न करे, हमारे मुँह से ऐसी बात निकले। मर्दों का क्या कुसूर ! खुद अल्लाह मियाँ ने चार करने की इजाज़त दी है, इसीलिये न कि एक बीमार हो जाय या बाल बच्चा न हो। आखिर हज़ार बातें होती हैं। शरीयत (धर्म सम्बन्धी कानून) की बात पर टीका टिप्पणी करना, तोबा ! मेरी हज़ार बार तोबा !" उन्होंने कानों पर हाथ लगा कर कहा।

"लेकिन चाची दुल्हिन को है क्या ?" किसी ने पूछा।

चाची रहस्यमय ढंग से कहने लगीं—"वही अपना वही वाली बीमारी। देखा नहीं, रंग हल्दी की तरह पीला होता जा रहा है। वह भी तो इसी

तरह" उन्होंने यह कहते हुए अँगुली उठाई—'सूख कर काँटा हो गई थीं। छः महीने मुश्किल से बात हुए होंगे क्यों भाभी? पर लोचा मेरा! अल्लाह अपनी मेहरबानी रक्खे! कौन सा बीमारी है जिसका इलाज नहीं। लेकिन अब तू वहाँ जा कर उससे न कह देना। रोगी से ऐसी बात छिपा कर रखते हैं।'' अन्दर मन्जूर न सुना, तो वह घण्टों गुम सुम बैठा, न जाने क्या सोचता रहा।

यद्यपि मुहल्लेवालियाँ सुरैया से यह बात न कहती थीं, फिर भी आप जानते हैं जब मुहल्ले में कोई बीमार हो तो दिन में एक बार तो उसकी तबियत का हाल जानने के लिये आना ही पड़ता है और यह भी पूछना ही पड़ता है कि ये? अब क्या हाल है? और अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करने के लिये—"देखो, मुँह कितना उतर गया है!" कहना अनिवार्य हो जाता है। मुहल्लेवालियाँ अपने कर्तव्य के पालन में सुस्ती नहीं करती थीं। दिन भर घर में आना जाना लगा ही रहता। सुरैया भी चुपचाप लेटी रहती लेकिन तुरैया हर आने-जाने वाली के सवाल का जवाब देती। या अक्सर चाची पास बैठी होतीं और कोई पूछने वाली तो वह झट बोल उठतीं—'अभी तो कुछ अच्छी नहीं हुई लेकिन अल्लाह अपनी मेहरबानी करेगा! उसकी कृपा से मायूस होना सब से बड़ा पाप है। आखिर होते होते [illegible] आराम होगा।'

अन्दर मन्जूर या तो चाची की बातें सुनता रहता या अपना स्वास्थ्य ठीक करने के लिये कोई न कोई व्यायाम करता और या किसी मरे हुए शरीर के निकट होने की कामना करता। सुरैया का उदास सौंदर्य उसकी निगाह में किसी बीमारी के लक्षण के अतिरिक्त और कुछ न रहा था। यों ही दिन बीतते गये। यहाँ तक कि मन्जूर की तीन चार दिन छुट्टियाँ बाकी रह गईं।

चाची को चुपचाप बैठे हुए देख कर मन्जूर ने पूछा—'किस फ़िक्र में हो चाची!'

चाची ने एक आह भरी। कहने लगी—'बेटा, मुझे कैसा फ़िक्र? बस, यही सोच रही हूँ कि अब क्या होगा?'

"क्या होगा?" मन्जूर ने हैरानी से पूछा।

चाची बोलीं—'दुल्हिन को आराम हो जाता तो मुझे फ़िक्र न रहती। वहाँ तुम जाने सारे दिन कहाँ फिरते रहते होगे। खुदा की मार दफ़्तर का काम भी तो खत्म होने में नहीं आता होगा। और घर में वह अकेली बैठा रहा करेगा, इतना भी नहीं कि किसी से बात ही करे। ऐसे भरे घर से वहाँ उजाड़

में जा पड़ना, मुझे तो इसका ख़याल आते ही हौल उठने लगती है। ख़ुदा करे तुम्हारी तरक्की हो जाय, तो नौकरानी ही रख लेते! पर चालीस रुपये में आज कल क्या होता है? फिर परदेश का मामला ठहरा और आजकल का ज़माना! मैं तो ज़ुबैदा को साथ ही भेज देती, पर तुम जानते हो, मुहल्ले वालियों की गज़ भर की ज़बान होती है, जाने क्या कहती फिरें। तुम्हारे घर में कोई बच्चावाला होता, तो भी हर्ज नहीं था। कहते हैं, अकेला एक और दो ग्यारह, पर बच्चे की ख़्वाहिश तो उम्र भर रहती। पर अब इस बीमारी में कहाँ? बरकत को भी यही बीमारी थी न, सारी उम्र बच्चे को तरसती रही। अब उस घर का नाम ही बाक़ी न रहा। मुझे तो यह दुख खाये जाता है, फिर ख़याल आता है," यह कह कर वे रुक गईं, फिर बोलीं—"चलो, छोड़ो, इस बात को, जो अल्लाह को मंज़ूर होगा, वही होगा! फ़िज़ूल फ़िक्र करना है।"

"तुम बात तो करो चाची!" मज़ूर बोला।

"बात क्या करूँ, माँ का दिल तो तुम जानते ही हो, आख़िर मैं तुम्हारी माँ की जगह हुई न! सोचती हूँ और कुछ नहीं तो बच्चा हो के लिये दूसरी शादी कर लेते। कम से कम घर का नाम तो रहता। इसके अलावा वह तुम्हारी पत्नी का भी ख़याल रखती। रोगी की जितनी भी सेवा हो, कम है बेटा!"

"बात तो ठीक है चाची!" मज़ूर ने सिर पर हाथ फेरते हुये कहा—"मुझे सोच लेने दो चाची!"

"चल पगला!" चाची बोलीं—व्यर्थ सोच साच कर अपने आपको हलकान करना। यह याद रख कि जो होना है, वह न तेरे बस में है, न मेरे बस में। जो अल्लाह को होगा, वही मंज़ूर होगा। वैसे अगर यही बात ठहर गई तो बेटा, तू सोच तो सही, वह कौन सी माँ होगी जो अपनी बेटी को सौत के भाड़ में झोंक दे? किसका जी चाहता है? मैंने मान लिया कि अल्लाह रखे, तेरी सीधा मिज़ाज की बड़ी अच्छी है, पर लोग तो सौत के साये से भी दूर भागते हैं। हाँ, कोई अपना रिश्तेदार गवारा कर ले तो कर ले, बिरादरी के लोग कहाँ ऐसा बलिदान करने लगे—बलिदान ही है न यह! क्यों बेटा तू तो आप सयाना है। फिर वह मुहल्ले का लड़का भी न हुई। मैं तो बस, तेरी ही फ़िक्र में घुल रही हूँ।" चाची ने एक आह भरी—"हमारे से, मज़ूर, जी चाहता है कि जैसे भी हो, तुझे सुखी देखूँ। अगर तुझे ज़रूरत हो, तो मैं अपने कलेजे की बोटी भी काट कर दे दूँ।"

रात को मञ्जूर को नींद न आयी थी। 'कोई बचा न होगा!' उसके कानों में गूँजता और सहसा उस ने दीवारें और मकान एक खण्डहर सा वियावान दिखाई पड़ते मानो इस घर के सारे निवासी छुट गये हों और अब वह पूर्व का एक निर्जीव घर रह गया हो। वह खिड़की में आ बैठा। सामने चौगान इस प्रकार मुँह बाये पड़ा था मानो कोई गहरा गुफा हो। उसने अनुभव किया कि वह उस गुफा में गिरा जा रहा है—गिरा जा रहा है। वह उठ बैठा और इधर उधर फिरने लगा। जुबेदा का सफ़ेद सफ़ेद चेहरा और बाँह अँधेरे में झिलमिला रहा थी। सुरैया तो चादर ओढ़ कर पड़ी हुई थी। वह सुरैया की पाँयतों पर जा बैठा। जुबेदा की चारपाई पर कोई मरे हुए शरीर का बच्चा अपने हाथ उठा कर रो रहा था—"माँ माँ आ माँ।" गुम्बद में कोई कबूतर चिल्लाया—'गुटुरगूँ।' उसने उस ओर देखा। गुम्बद पर कबूतरों का एक जोड़ा बैठा हुआ दिखाई दे रहा था। फिर उसकी निगाह जुबेदा पर जा पड़ी। ठीक उसी समय जुबेदा ने करवट ली और उसकी बाँह मञ्जूर की गोद में आ गिरी। गोरी-गोरी नरम नरम बाँह! उसकी आँखें जाने क्यों चमक उठीं। उसके ओंठ उस बाँह पर झुके फिर वह रुक गया और उठ कर कोठा फाँद कर चाची के पास चला गया। उस समय शायद कोई ग्यारह का समय होगा। चाची बैठी इज़ारबन्द बुन रही थी—"क्यों ख़ैर तो है?" वह उसे देख कर घबरा कर बोली।

"नहीं, बात तो कोई नहीं।" मञ्जूर ने झिझक कर जवाब दिया—"वैसे ही चाची, मुझे तुमसे कुछ कहना है।"

"हाँ हाँ, शौक़ से कहो।" चाची बोली।

"मेरा मतलब है।" उसने कहा—"तुम जानती हो हो चाची, इस हालत में सुरैया को साथ कैसे ले जा सकता हूँ; लेकिन साथ न ले जाऊँ, तो मुझे रोटी की बहुत तकलीफ़ होगी।"

"हाँ, बेटा!" चाची कहने लगीं—"बाज़ार की रोटी किस काम की, उससे तो भूखा रहना अच्छा है।"

"तो चाची, मेरा मतलब है, अगर तुम बुरा न मानो तो..."

"ले पागल, मैं क्या तेरी बात को बुरा मान सकती हूँ! तू जो जी में आये कह।"

"मेरा मतलब है।" मजूर ने फिर दोहराया—"अगर चाची तुम मुझे अपना गुलामी म " वह कहते कहते रुक गया। चाची भी यों चुप बैठी रहीं, जैसे किसी सोच में पड़ गई हों।

"तुम्हारा मतलब जुनैदा के रिश्ते से है?" चाचा पूछने लगीं।

"चाचा, मैं ज़िन्दगी भर तुम्हारा एहसान मानूँगा," मजूर ने झुकी झुकी आँखों से कहा।

"ख़ैर, एहसान को तो तू जाने दे," चाची बोलीं—"मुझे तो शायद इस बात में भी कोई एतराज़ न होता आख़िर तुमसे बढ़ कर मुझे कौन प्यारा है बेटा, पर मुहल्लेवाले क्या कहेंगे?"

"मुहल्लेवाले !" मजूर ने सिर उठा कर गुस्से में कहा—"मुहल्लेवाले !" वह घृणा से बोला और हँस पड़ा—"मुहल्लेवालों की मैं क्या परवाह करता हूँ, सुना तुमने चाची?"

"मुहल्लेवाले !"मसजिद का गुम्बद चिल्ला उठा। नीचे चौगान में कोई बूढ़ी आदूगरनी सिर पर दिया रखते किसी चरखे की लय पर नाच रही थी। उसके चारों ओर काली काली झुकी हुई दीवारें हाथ में हाथ डाले झूम रही थीं। कोठे पर अँधेरे में चाची के सफ़ेद सफ़ेद दाँत चमक रहे थे।

—श्री मुमताज़ मुफ़्ती

नयना

अख्तर के बूटों के तल्लों में लोहे के नाल जड़े हुये थे इसलिये वह किताबें बग़ल में दबाये, बहुत धीरे धीरे क़दम उठाता हुआ सीढ़ियों पर चढ़ रहा था, ताकि दूसरे कमरों तक शोर न पहुँचने पाये।

आज फिर उसको देर हो चुकी थी।

मौलाना क्लास में लेक्चर दे रहे थे। कहने को तो मौलाना थे मगर दाढ़ी-मूँछ साफ़, अचकन ग़ायब, चूड़ीदार पायजामा नदारद बिलकुल अप-टु-डेट, तेज़ क़ैंची की तरह चलती हुई ज़बान! इसलिये पहिले दो शायरों को हम छोड़ देते हैं। 'नज़ीर' बेशक अपने ज़माने से कहीं आगे था, वह सही मानों में पहिला हिन्दुस्तानी शायर था। मगर उस वक्त उर्दू सिवाय हिन्दी, फ़ारसी और अरबी अदब (साहित्य) के किसी अदब से मुतअस्सिर (प्रभावित) न हुई थी। इसलिये 'नज़ीर' को भी हमें छोड़ देना पड़ेगा। दौरेजदीद (वर्तमान) का सालार, शायरे एशिया, इक़बाल था

अख्तर चुपके से क्लास में दाख़िल हुआ, और सब से पिछली सीट पर दुबक कर बैठ गया।

हुआ यह कि रास्ते में जब वह चमारों के मुहल्ले में से गुज़र रहा था, तो उसने वहाँ एक बड़ा मजमा देखा। वह भी रुक गया। पूछने पर मालूम हुआ कि एक स्त्री मरी पड़ी है—कूड़े करकट के ढेर पर एक मृत स्त्री का लाश एक मृत शिशु सहित खून में लथपथ पड़ा है।

यह नवयुवती कुम्हारिन जवानी के हाथों विवश हो कर एक ऐसा अपराध कर बैठी कि आज निस्सहाय और निराधार वह साधारण रास्ते पर एड़ियाँ रगड़-रगड़ कर प्राण देने पर बाध्य हो गई। जवानी से अधिक अपने सरल स्वभाव, चन्द टकों का लालच और एक सभ्य बाबू की सभ्यता का शिकार थी। अविवाहित लड़की के पेट में गर्भ के चिह्न देख कर बिरादरी वालों ने उसको बिरादरी से निकाल दिया। वह रोई, चीखी, चिल्लाई फिर पागल हो गई। और आखीर में यह उसके अल्प जीवन का अन्तिम दृश्य था।

अख्तर कालेज की ओर चल दिया। लोग बड़बड़ा रहे थे—"पापिन, कल-मुँही कलंकिनी!"

कालेज बिल्कुल दरिया के किनारे स्थित था। जब अख्तर कालेज के फाटक के अन्दर दाखिल हुआ, तो बड़ की घनी छाँह के नीचे नयना एक बकरी के कान पकड़े ठीक चाँदनी रात की भाँति मौन खड़ी थी।

वह पीले रंग का एक लहँगा, धारीदार कुर्ती पहिने हुये थी। अख्तर को एकदम अपने सामने देख कर वह शर्मा गई। इस चित्ताकर्षक उत्सुकता ने उसे और भी सुन्दर बना दिया। आज रात को अख्तर से मिलने का वादा था।

हाई स्कूल पास कर के जब अख्तर ने कालेज में प्रवेश किया, तो उसने देखा कि कालेज में नयना ही की धूम थी वह धोबिन थी। हम कथा कहानियों में किसी ऐसी मालिन का क़िस्सा, जिसके प्रेम में कोई राजकुमार पागल हो जाता है, पढ़ कर हँस देते हैं। चण्डीदास का रामी के साथ प्रेम हमारे होंठों पर एक व्यंग्यमय मुस्कान पैदा कर देता है। लेकिन काश! हम पहिले एक नज़र नयना को देख कर फ़तवा देते!

उसका असली नाम शाहज़ादी था। मगर नयना शायद उसे उसकी आँखों के कारण कहा जाता था। कटोरा सी आँखें छलकते हुए दो कटोरे, भौंहें अत्यधिक घनी और लम्बी, इतनी कि उनके बोझ से पपोटे सदा झुके रहते होंठों पर नमी सी और निचला होंठ दायीं ओर से ज़रा सा नीचे की ओर झुका हुआ, बाईं आँख के नीचे गाल के उभार पर नन्हा सा, काला तिल। उसका रंग लाल-सफ़ेद न था, बस मन्दक की तरह—आँखें ऐसी कि हर समय रो पड़ने पर आमादा; लेकिन आँसू पी लेने पर भी मजबूर; होंठ ऐसे कि कुछ कह देने के लिये बेचैन, लेकिन कुछ न कहने में भी मसलहत समझें।

उसकी माँ कहती—"हमारी बिटिया को तो नवाबज़ादी होना चाहिये था!" नयना भी यह बात अनुभव करती थी। कल्लू, मुन्नू, चुनुवा जैसे धोबी नव-युवकों को वह मुँह न लगाती थी।

सारा कालेज उसके प्रेम का दम भरता था। धोबियों के घर कालेज के पास ही से नदी के किनारे किनारे फैले हुए थे। क्रिकेट का खेल होते समय अनायास गेंद उछल कर नयना के अहाते में जा गिरता। कोई नौजवान लड़का जाता और दरवाज़े पर खड़ा हो कर पूछता—"क्या मैं गेंद उठा सकता हूँ?" नयना चौंक कर चूँदरी से सिर ढाँप मुँह फेर लेती। खाली घंटा में लड़के टोलियों में खड़े नयना के घर ... देख देख कर आहें भरते रहते और

कहते कि काश ! नयना स्वयं अपने हाथ से उनके कपड़े धोने पर आमादा हो, तो वे एक दिन क्या कपड़े के हिसाब से धुलाई चुकाने को तैयार हैं !

ज़बानी बातचीत के अतिरिक्त किसी प्रकार की कोई भी हरकत करने की किसी लड़के में हिम्मत नहीं थी । एक बार एक मनचला नवयुवक असभ्यता की सीमा पार कर गया था तो नयना ने प्रिंसिपल से शिकायत कर दी थी और प्रिंसिपल साहब ने, जो इस विषय में बड़े कड़े थे उस लड़के को कालेज से निकाल दिया था । इसलिए अब नयना लड़कों के लिये सिर्फ़ एक सुन्दर स्वप्न बन कर रह गई थी ।

भला अख़्तर क्या मनुष्य न था कि नयना को देख कर उसका जी न मचलता ! वह स्वयं सुन्दर था—गोरा रंग बड़ी बड़ी आँखें मसें तक भीगी आया न था । मूँछों की जगह रोएँ थे । ये रोएँ, जो छः महीने के बच्चे के मुँह पर भी होते हैं । पन्द्रह या सोलह वर्ष की आयु होगी । यानी लगभग नयना के बराबर या शायद छः महीने अधिक । इन्ट्रेंस का इम्तिहान देने के बाद उसने गर्मियों की छुट्टियों में कई प्रकार के कोकशास्त्र और कामशास्त्र छिप छिप कर पढ़ डाले । उसके बड़े भाई के मित्र आते थे तो वह परदे के पीछे खड़ा उनकी बातें सुना करता । बेतकल्लुफ़ी में वे लोग बड़े सुन्दर सुन्दर अनुभवों की चर्चा किया करते थे । किसी एंग्लो इन्डियन मिस को फाँसने के मन्सूबे किसी वकील की सुन्दर लड़की पर डोरे डालने के प्रोग्राम, किसी सुन्दर अभिनेत्री के सुडौल शारीरिक अंगों का उत्तेजना बढ़ाने वाले शब्दों में ज़िक्र । ये सब बातें अख़्तर के मन में गुदगुदियाँ किया करती थीं । उसने 'अलिफ़लैला' एवं 'क़िस्सा चार दरवेश,' 'चन्द्रकान्ता,' 'दरबार हरामपुर' इत्यादि जैसी कई किताबें कई कई बार पढ़ डालीं । इसके अलावा एक दिन उसने अपने भाई की मेज़ की दराज़ में एक अलबम तसवीरों का भी देखा ।

ईद और दूसरे त्योहारों पर उसकी माँ से मिलने के लिये औरतें आतीं । उनके साथ नौजवान लड़कियाँ भी होतीं । वह उनको चुपके-चुपके किवाड़ों की दराज़ में से देखा करता था, लेकिन वह था बहुत शर्मीला । लड़कियों से बात करना तो बड़ी बात है, वह तो नवयुवती के सामने आते ही काँपने लग जाता । ज़बान फूल जाती, दिल धड़कने लगता—यही हाल उसका अब हुआ ।

वह लड़कों की उन टोलियों से अलग रहता, जो नयना के घर की ओर देख देख कर ठंडी आहें भरा करते थे । वह अपनी ज़बान पर नयना का नाम तक न लाता था, मानो उसको नयना से कोई काम ही न था । मगर वह

निस्सन्देह नयना का सब से बड़ा प्रेमी था।

अख़्तर छिप छिप कर नयना के दर्शन करता। वह बकरियों को नदी-किनारे घास चराने के लिये ले जाता, तो यह खेतों और झाड़ियों में दुबका उसको ताका करता। वह कुएँ पर पानी भरने जाती तो, यह भी किसी न किसी पेड़ की आड़ में खड़ा उसे देखा करता। और जब कभी संयोगवश रास्ते में मुठभेड़ हो जाती, तो अख़्तर शरमा कर सिर झुका लेता और वहीं पर खड़ा का खड़ा रह जाता। उसके चौड़े माथे पर पसीने की बूँदें चमकने लगतीं—गर्व, गम्भीरता और सम्मान की मिट्टी से नयना का निर्माण हुआ था। वह सिर ऊँचा किये, मौन और घमण्ड के साथ रानियों की तरह क़दम उठाती हुई उसके पास से निकल जाती। उसके पाँव में पड़ी हुई पाज़ेब हर क़दम पर एक रुपहली आवाज़ पैदा करती, और धीरे धीरे दूर पहुँच कर उसकी आवाज़ गुम हो जाती। उस समय अख़्तर सिर उठाता, कभी-कभी उसकी आँखें डबडबा आतीं।

नयना से उसके इस छोटे से प्रेमी के दिल का हाल छिपा न रह सका। उनकी पहिली भेंट मेले के अवसर पर हुई।

अब तो धीरे धीरे मेलों की जगह नुमाइशें ले रही हैं, और थियेटरों की जगह बोलते फ़िल्म। लेकिन चूँकि यह एक धार्मिक स्थान था, इसलिये यहाँ के मेले का ढंग ही और था। छः-सात दिन तक ख़ूब चहल पहल रहती थी।

हवाई पँगोड़े, चरख़ी, झूले, चाट, कुल्फ़ी, मिठाई कचौरी खिलौनों, फूलों और किताबों की दूकानें साधुओं की टोलियाँ, दंगल और खेल-तमाशे, मोटी गरदनें टूटे हुए कान, मैली लुंगी तहमदें, दाढ़ियाँ, पान, मदारी, बन्दर, रीछ बाज़ीगर, रंग बिरंग की कपड़ों वाली औरतें, थिएटर, चिड़िया घर कठपुतलियों के खेल, गन्नों का रस और भनभनाती हुई मक्खियाँ।

अख़्तर मेले में घूम रहा था। ग़ज़लों की दो पैसे वाली किताब हाथ में थी, और ऊपर मोटे अक्षरों में लिखा—

"क्यों न लूटें मज़े बरखे यार के।"

एक ओर कुछ नटनियाँ नाच रही थीं। कभी लम्बा घूँघट निकाल आँचल की आड़ से अपनी सुरमई कजरारी आँखों से इशारे करतीं, बिल्कुल नई-नवेली दुल्हिन की तरह शरमातीं, लजातीं और बदन चुरातीं और कभी ढोलक की एक ही थाप के साथ पाँव ज़ोर ज़ोर से ज़मीन पर मारने लगतीं, घुँघरुओं की आवाज़ ऊँची [illegible] एकदम पीछे कर देतीं, सिर नंगे हो जाते.

चुटियाँ कंधों पर लटकने लगतीं और वे साँप की तरह बल खाने लगतीं, मुँह फैलाती हुईं कभी तो आगे बढ़तीं और कभी इनकार के तौर पर सिर हिलाती हुईं पीछे हट जातीं। कभी छुई-मुई की तरह बेजान हो कर ज़मीन पर गिरने लगतीं, तो कभी चंचल हिरन की तरह गर्दन और बाँहें तान लेतीं, और जैसे तुर्के क़दमों से ज़मीन नापने लगतीं, घाघरा समेटी हो जाता, सुन्दर फुन्दनों वाली लम्बी चोटियाँ हवा में उड़ने लगतीं, माथे माथे पर पसीने की बूँद बूँद में चमकने लगतीं, दुपट्टे में अपना घूँघट समेटने लगतीं, कामुक नथुने फड़कने लगते। नृत्य के बीच जब कोई व्यक्ति उनको पैसा या रुपया दिखा देता तो वह बड़े नाज़ से पैसा लेने के लिए आगे बढ़तीं और पैसा की उँगलियों में डालती साथ-साथ उँगलियाँ उलझ कर रह जातीं और नाक सिकोड़, कमर मटका, बड़े नखरे के साथ 'हाय' करके रह जातीं, फिर महीन स्वर में बनावटी रोष के साथ मुँह बिसूर कर कहतीं— 'क्यों जी हमारी कलाई तोड़ ही डालोगे क्या?' और फिर एक सुरीली तान का ताना बनाती हुई पर भाग जातीं और कमर पर हाथ रख कर खिलखिला कर हँसती हुई नाचने लगतीं। चन्दर से भी न रहा गया। उसने जेब से चमचमाता नर्तकी को रुपया दिखाया। मगर जैसे ही वह उसके पास पहुँचा, वह वहीं रुपया ज़मीन पर फेंक भाग खड़ा हुआ। अपने पीछे दूर तक उस मारगा के साथ ऊँचे ठट्ठों और तालियों की आवाज़ें सुनाई देती रहीं।

जिस जगह नटों का ऐसा खाना खिलिया-घर था, वहाँ पर एक थियेटर कम्पनी भी थी। हाटों के बाज़ार की विशेष प्रकार की गन्ध चारों ओर फैली हुई थी। एक आदमी भोंपू मुँह से लगाये अपनी मोटी लेकिन बैठी हुई आवाज़ में बाहर खड़ा चिल्ला रहा था। ज़्यादा रौनक़ थियेटर कम्पनी में हुआ करती थी। दिन के समय तो ताश और जादू के खेलों के अलावा गाना भी होता और नाच भी दिखाया जाता था, लेकिन रात के समय गुलबकावली, लैला मजनूँ, शीरीं फ़रहाद, ग़ाज़ी कमालपाशा, नल दमयन्ती, सीता हरण आदि खेल हुआ करते थे।

बहुत बड़ा ख़ेमा था। बाहर सस्ते बाँस कर स्टेज बनाया गया था। दरवाज़े के एक ओर टिकट बेचने वाला अवकाश के समय लोहे के पेग के पास बैठा उस पर अपनी उँगलियों से तबला बजाया करता और दरवाज़े के दूसरी ओर लड़के लड़कियों के कपड़े पहिने, होंठों और गालों पर सुर्ख़ी लगाये, कूल्हों पर हाथ रखे, मटक मटक कर नाचते थे। और एक मसख़रा लम्बा चोगा

पहिले उनके साथ दिल्लगी किया करता था।

जब अख़्तर वहाँ पहुँचा तो प्रेमा क़रीब क़रीब भर चुका था। बाहर इश्तहारी नाच हो रहा था। सैकड़ों लोग खड़े उनको देख रहे थे। रंगीन और फुँदेदार पगड़ियोंवाले नटखट देहाती युवक हाथों में लट्ठ लिये, चमेली के हारों में लिपटी हुई बत्तियाँ बगलों में दबाये पान चबाते हुए बड़े ध्यान से उन लड़कों का तरफ़ देख रहे थे। कुछ उनको सचमुच की लड़कियाँ समझ कर घन्टों तेज़ धूप में खड़े एक ख़ास आवाज़ में खाँसते और खँखारते और कई कई तरह से आँखें लड़ाते और जब कभी पकौड़ा सी नाक वाला मसख़रा उन नाचने वाले लड़कों में से किसी के गाल को छू कर पर भाग जाता और दर्शकों को देख देख कर और उनको इशारे कर कर के अपनी अँगुलियाँ यों चाटने लगता जैसे उनमें गुड़ लगा हुआ हो तो ये देहाती बेचैन हो हो कर पहलू बदलने लगते इतने में अख़्तर ने नयना को देखा।

नयना वहीं एक मैला सा पीला लहँगा और एक तंग कुर्ती पहिने हुए थी। गर्दन में चाँदी की हँसुली, पाँव में पाज़ेब, कलाइयों में मोटे कंगन, आँखों में सुर्मा, पिंडुलियाँ आधा के क़रीब नंगी, इज़ारबन्द के नीले पीले लाल फुँदन साथ लटक रहे थ। सिर के बीचोबीच माँग की धारी, काले और घने बालों का चोटी।

आज अख़्तर ने अपना भाग्य आज़माने की कोशिश की। वह नयना के क़रीब जा पहुँचा। नयना मसख़रे की हरकतें देख-देख कर मुस्करा रहा था।

अख़्तर कुछ देर चुप खड़ा रहा, फिर धीरे से बोला—"नयना! तमाशा देखोगी?"

नयना ने मसख़रे पर से नज़र हटा ली। वह उस समय मिट्टी के एक ऊँचे ढेर पर खड़ी थी। उसने ऊँचाई से अख़्तर की तरफ़ ऐसे देखा, मानो सम्राज्ञी अपने किसी तुच्छ दास की ओर देखे। एक क्षण के बाद कुछ जवाब दिये बिना उसने उसकी ओर से दृष्टि हटा ली और दूर आकाश में उड़ती हुई चीलों का ओर देखने लगी तथा अपनी एक टाँग को धीरे धीरे बराबर हरकत देती रही।

अख़्तर ने जल्दी से दो टिकट ख़रीदे और नयना के पास जा कर बोला—"मैंने टिकट ख़रीद लिये।"

नयना ने घमण्ड के साथ उसकी ओर देखा और बिना कुछ कहे-सुने आगे

चल दी। अख़्तर ने हकलाते हुए कहा—"नयना, मैंने टिकट ख़रीद लिये हैं।'

मगर नयना ने कोई जवाब नहीं दिया। वह चलती गई और थियेटर हाल में दाख़िल हो गई। टिकट चेकर ने उसे रोकना चाहा। उसके हाथ में उसकी चूँदरी का आँचल आ गया। वह चिल्लाया—"अरे, आ छोकरी! कहाँ घुसा जाती है? टिकट निकाल!"

अख़्तर ने बढ़ कर टिकट उसके हाथ में दे दिये—"यह क्या बेहूदगी है? यह रहे टिकट।

नयना ने क्रुद्ध दृष्टि से टिकट चेकर की ओर देखा और अत्यन्त घृणा से झटका दे कर उसने अपना आँचल छुड़ा लिया।

फ़र्स्ट क्लास के टिकट और अख़्तर का रहमाना ठाठ देख कर वह कुछ लज्जित-सा हो गया। अख़्तर से बोला—"माफ़ कीजिये, मालिक, मुझे मालूम नहीं था।'

यह था उनका प्रथम मिलन। अख़्तर की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था।

× × ×

इस मिलन के बाद उनकी मित्रता में उन्नति, कालेज के निकट ही एक नया टाकी हाउस खुलने पर, हुई।

जब बिल्डिंग के बाहर रंग बिरंग की झण्डियाँ लग गईं, तो बाजेवालों का शोर, मिस नादिया की हरदमादम तस्वीरें बड़े बड़े पोस्टर यह सब-कुछ देखने के लिये लड़के बच्चे इकट्ठ हो जाते, उनमें नयना भी शामिल होता था।

संध्या समय सिनेमा हाउस के सामने हिम्मकाव हो जाता। दो एक लाल पगड़ियों वाले कानिस्टिबिल भी घूमने लगते। तोता गँडेरी वाला बड़े मधुर स्वर में बर्फ़ में दबी और गुलाब में बसी हुई गँडेरियों के गाने गाता, चाट और उबले हुए चने, और एक पैसे के शरबत का गिलास बेचने वालों का मजमा होता गानों की छोटी-छोटी किताब बेचने वाले छोकरे गला फाड़ फाड़ कर चिल्लाते। अखाड़े में दो चार लड़ने वाले कसाई-छौंड काली नीली तहमद बाँधे ऐंठते हुए इधर से उधर गश्त किया करते।

अख़्तर ने एक गेट कीपर को गाँठ लिया। चार छ आने की घूस में वह और नयना दोनों खेल देख आते। नयना सिनेमा बड़े चाव से देखता था।

इसी प्रकार दिन बीतते गये। नयना अख़्तर से हिल मिल गई थी। मगर उसने आज तक प्रेम न प्रकट किया था, न उसके बरताव में कोई ख़ास

परिवर्त्तन ही हुआ था। वह पूर्ववत् चुपचाप रहती, जो-कुछ कहती वह भी बड़े संक्षेप में। लेकिन अख़्तर जो कुछ कहता वह चुपचाप सुन लेती। उसके प्रेम के दावों को न तो उसने कभी झुठलाने की कोशिश की और न उसके जवाब में स्वयं उसने किसी प्रकार के प्रेम का दावा किया। मगर उसको अख़्तर का साथ नापसन्द न था। आड़ू के पेड़ के नीचे, नदी किनारे, घर से दूर वह घन्टों बैठी उसकी बातें सुना करती। उसके अपनेपन में भी एक प्रकार के परायेपन की झलक थी। जिसके कारण अख़्तर अपने मन की तुच्छ सी इच्छा भी पूरी करने से झिझकता था। क्या यह नयना की अत्यधिक उदारता और उसके साथ ख़ास रियायत नहीं थी कि वह केवल अख़्तर ही से मिलती थी। उसके पास जब तक चाहे वह बैठी रहती थी, उसके प्रेम की बढ़ बढ़ कर की हुई बातों को चुपचाप शान्ति के साथ सुना करती थी। और सम्भव है, वह उन पर विश्वास भी रखती हो।—नयना की ये बातें अख़्तर की इच्छा अग्नि को भड़काती ही चली गईं।

× × ×

गर्मियों की एक सन्ध्या की बात है—

अख़्तर नदी किनारे खेतों में आड़ू के पेड़ के नीचे बैठा नयना की प्रतीक्षा कर रहा था।

सूर्य क्षितिज के पास पहुँच चुका था। उसकी किरणें पानी की लहरों पर नाच रही थीं। बड़ी-बड़ी नौकायें रेत की बोरियों से लदी हुई मन्दगति से बहती चली जा रही थीं। सन्द पक्षी बड़ी तेज़ी से हवा में चक्कर लगा रहे थे। मौक़ा पा कर वे पानी पर झपटते और कुछ-न कुछ ले उड़ते। दो ढाई फ़र्लांग पर नदी का लाल रंग का लोहे का दोहरा पुल था। कभी कोई इंजन शोर करता। ऊपर वाले पुल पर मोटरों, लारियों, छकड़ों और साइकिलों का ताँता बँधा हुआ था। कभी कभी तो ऊँटों की लम्बी कतार भी दिखाई दे जाती थी। नदी के किनारे किनारे दूर तक सफ़ेद सफ़ेद कपड़े बिछे हुये थे। धोबियों की 'छुआ छू' की मद्धिम आवाज़ें सुनाई दे रही थीं। और गधे बड़ी सुस्ती से सूखी हुई घास पर मुँह मार रहे थे।

नयना आई।

उसके हाथ में अभी तक वह बेडौल-सी छड़ी थी, जिससे वह दिन भर अपनी बकरियों को हाँकती रही थी। वह रुक गई। उसके पाज़ेबों का झंकार भी ख़त्म हो गई।

"तुम कहाँ थीं नयना ? मैं दोपहर से बैठा तुम्हारी राह देख रहा हूँ।"

नयना के होंठों पर हलकी सी मुस्कराहट खेलने लगी। उसने अपने मैले हाथों को लहँगे से पोंछते हुये कहा—"देखो, आज मैंने मेंहदी लगाई है!"

इसी प्रकार देर तक आश्चर्यमय वार्त्तालाप होता रहा, यों ही, सिनेमा की बातें, किसी नाव के डूब जाने का किस्सा पेड़ों और नदी के पानी पर विचार विमर्श—बेजान-सी बातचीत, जिसमें खास तौर से अख्तर को कुछ भी मज़ा नहीं आ रहा था। वह नयना के मेंहदी लगे हाथों और पैरों की ओर देख रहा था। आज उसका लहँगा भी धुला हुआ था, चुस्त कुर्ती भी साफ़ मालूम होती थी, आँखों में काजल भी सावधानी के साथ लगाया गया था और बाल भी चिकने थे। नई रँगी हुई ओढ़नी में अबरक के कण झिलमिल झिलमिल कर रहे थे। और अबरक के कुछ कण उसके सन्दली माथे पर चमक रहे थे।

"नयना! क्या तुम कपड़े धोने के लिये घाट पर नहीं आतीं?"

"नहीं!" नयना होंठों को मनोहर ढंग से हिलाती हुई बोली।

"क्यों?"

"मेरी माँ कहती है, मेरी बिटिया शाहज़ादी है।"

अख्तर ने छेड़ने की गरज़ से कहा—"तो फिर क्या तू यों ही दिन भर बैठा मक्खियाँ मारा करती है?"

"हाँ जी, बैठी रहती हूँ! बड़े आये वहाँ से काम कराने वाले। मैं तो बकरियाँ चराया करती हूँ।"

"उँह, बड़ी आई बकरियाँ चराने वाली। क्या शाहज़ादियाँ बकरियाँ चराया करती हैं।"

नयना के पास इस बेजोड़ तर्क का कुछ भी जवाब न था। वह बिगड़ कर उठ खड़ी हुई और जाने लगी। अख्तर ने रोका। वह कन्धों को ज़ोर से हिला कर बोली—"नहीं-नहीं, अब मैं नहीं ठहरूँगी।"

बड़ी मुश्किल से अख्तर ने उसको मनाया।

सूर्य अस्त हो रहा था। दूर से बसरी की धीमी आवाज़ें आ रही थीं। ऊँटवालों की तानें, बहुत दूर पर गधों की 'ढेचूँ ढेचूँ' और एक अकेला कौआ चोंच खोले पेड़ के ठूँठ पर बैठा खेतों के क्रम पर दृष्टि दौड़ा रहा था।

लेकिन सब आवाज़ें धीरे धीरे ख़त्म होती जा रही थीं। वातावरण पर निस्तब्धता मँडराने लगी। नयना भी अपने स्वभाव के अनुसार चुप थी और अख्तर के दिल में नित्य की भाँति भावनाओं की उथल पुथल। नयना

नदी से परे क्षितिज में मिल जाने वाली पगडंडी पर दृष्टि जमाये हुये थी। और अख़्तर नयना की ओर देख रहा था। सूर्य की अन्तिम किरणें अंजन की घाटी में धँस रही थीं और उनका प्रकाश नयना के सीने पर पड़ रहा था। लहरों का उतार चढ़ाव उसके सीने पर सिनेमा के एक दृश्य की तरह दिखाई पड़ रहा था।

तेज़ी से चमकती हुई प्रकाश की रेखायें उसके सीने पर मन्द हो कर बह जाती हुई उसकी गरदन का भार पड़तीं और ठोड़ी तक पहुँच कर लुप्त हो जातीं।

सन्ध्या की इस आनन्दमयी शान्ति में नयना को सामने पा कर अख़्तर के धैर्य का बाँध टूट गया।

अख़्तर ने नयना का हाथ थाम लिया। उसके होंठ काँप रहे थे—झील के पुल पर न कोई मोटर था, न इक्का, न साइकिल। और नेत्रों पर निस्तब्धता का राज्य था। ऐसा लगता था, मानो प्रकृति पंजे के बल चुपचाप खड़ी थी।

कम्पित स्वर में अख़्तर बोला—"नयना! मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। बहुत अधिक, बहुत ही अधिक। हर दम ..."

न जाने उसने और क्या-क्या कह डाला। नयना मौन रही और सृष्टि पर भी निस्तब्धता का राज्य था। अख़्तर ने अपने शब्द स्वयं अपने कानों से सुने, वह उनके कम्पन, उनकी विनम्रता का अनुभव करके स्वयं घबरा उठा, वह परेशान हो कर चुप हो गया। यह रहस्यमय शान्ति उसके हृदय में एक विचित्र भय सा उत्पन्न कर रही थी। उसके मन में एक अंधी इच्छा यह थी कि यह शान्ति किसी प्रकार भंग हो जाय। और यह शान्ति भंग हो गई।

झील के पुल पर स्कूल के चन्द बेफ़िक्र छोकरे किसी स्काउट गीत की गत पर सीटी बजाते हुये चले जा रहे थे। तिरछी टोपियाँ, चमकती हुई आँखें, बाँकी चाल, सड़क पर पड़े हुए छोटे-मोटे पत्थरों को ठोकरें लगाते हुए।

अपने अतिरिक्त उन छोकरों की आवाज़ें सुन कर अख़्तर के मन को साहस-सा हो गया। मगर उसका शरीर चूर-चूर हो रहा था। नयना अब भी बुत बनी बैठी थी। अख़्तर ने उठने की कोशिश करते हुये कहा—"नयना, मैं जाता हूँ।"

नयना ने उसका हाथ धीरे से दबा कर कहा—"बैठो!" यह उसने इतने धीमे स्वर में कहा था कि उसकी आवाज़ और पूर्ण मौन में अन्तर क़ायम करना असम्भव था। अख़्तर एक ख़रीदे हुये गुलाम की तरह वहीं ज़मीन पर

बैठ गया और नयना की गहरी आँखों को देखने लगा। लेकिन उसकी आँखें इतनी भावहीन थीं कि अख्तर को सन्देह होने लगा कि 'बैठो!' शब्द नयना के नहीं बल्कि उसके अपने होठों पर निकले थे।

अख्तर ने नयना के हाथ की तरफ़ देखना शुरू किया, जो उसके हाथों में एक कली की भाँति छिपा हुआ था—कमल जैसा—और अख्तर ने नयना का हाथ ऊपर कर अपने होंठों से छू लिया।

सहसा नयना ने बड़ी तेज़ी के साथ अपना हाथ वापस खींच लिया। वह एकदम से उठ खड़ी हुई। ऊँचा सिर और अभिमानी आँखें आग बरसाने लगीं। होंठ काँपने लगे नथुने फड़कने लगे। वह मुँह से कुछ कहना चाहती थी, मगर क्रोधावेश में उसके मुँह से शब्द न निकलते थे। उसकी मुट्ठियाँ भिंच कर रह गईं—न जाने अख्तर किस विचार में था। उसने नयना को अपने बाहुपाश में खींच लिया। नयना ने उसके बाल नोच लिये, चिल्ला कर बोली—"छोड़ मुझको, नहीं अभी चिल्लाती हूँ!' अख्तर ने बिना कुछ जवाब दिये अपने होंठों से उसके जलते और काँपते हुए होंठ बन्द कर दिये।

नयना तड़पने लगी। लेकिन अख्तर की मज़बूत बाहों की पकड़ तंग होती चली गई। नयना विवश हो गई। उसने हाथ पैर हिलाना बन्द कर दिया। अख्तर ने अनुभव किया मानो वह किसी लाश को गले से लगाये खड़ा हो। उसने अपनी बाहें ढीली कर दीं और नयना टूटी हुई शाख की तरह उसके पैरों में गिर पड़ी—फिर वह फूट-फूट कर रोने लगी। अख्तर घबरा कर उसके पास ही बैठ कर उसको बड़े प्यार से दिलासा देने लगा—'नयना! देखो, मेरी प्यारी देखो तुम ख़फ़ा हो गई! बस इतनी सी बात पर! बस ज़रा-सा हाथ चूम लेने पर! मैंने तुमको कहा ही क्या है! बताओ बोलो, क्या तुमको प्यार करने में बुराई है! अच्छा नयना! बोलो कहो न!"

नयना ने उसके गले में बाहें डाल दीं और अधिक फूट-फूट कर रोने लगी। अख्तर ने उसको बहुत ढाढ़स दिया। दूर हेडमास्टर के बंगले के रेडियो से शहनाई का कोई गीत उड़ने लगा। ठण्डी हवा चलने लगी, जिसमें नशा के टपके पानी की-सा नमा था। पेड़ झूमने लगे। बाद के पेड़ की पत्तियाँ तालियाँ बजाने लगीं। नयना रोते-रोते मुस्कराने लगी फिर शरमा कर आँचल में मुँह छिपाने लगी।

बड़े-बड़े लाल रंग के मेंढक नदी के किनारे दूर दूर तक बैठे चाँदनी का आनन्द ले रहे थे। कभी कभी वे उछल उछल कर छलाँग लगाते और छप

की गहराई में डूब जाते । अख्तर और नयना उसको देख देख कर हँसते रहे और बात करते रहे मीठी-मीठी, झिझक झिझक कर ।

जब अख्तर जाने को तैयार हुआ, तो उसके जाने पर नयना के गाल लगे हुए थे । अख़्तर ने उसके बालों पर हाथ फेरते हुए कहा—"अच्छी नयना ! अच्छी शाहज़ादी ! बताओ अब तुम मुझसे ख़फ़ा तो नहीं हो ?"

नयना ने मुस्करा कर अपनी बाहें उसकी गर्दन में डाल दीं ।

अख़्तर नयना के पास मुँह ला कर बोला—"देखो नयना ! कल कल कल नहीं परसों । हाँ परसों रात को जब तुम्हारे घर में सब लोग सो जायँ, तो तुम यहीं, इस पेड़ के नीचे आ जाना—यानी क़रीब ग्यारह बजे समझीं और याद रहे सूरज निकलने से पहिले वापस नहीं जाने दूँगा ।"

नयना शरमा कर पेड़ की आड़ में हो गई ।

अख़्तर ने उसका हाथ थाम लिया । "आओगी ? बोलो, नयना ! शाहज़ादी !"

नयना हाथ छुड़ा परे हट कर चाँदनी में दुविधा की मूर्ति बनी खड़ी रही । एक पल के लिये झुका झुका आँखों से ज़मीन की ओर देखती रही । अख़्तर के दुबारा पूछने पर उसने सिर हिला कर स्वीकृति दी और फिर एक कुलाँच मार कर और दोनों हाथों से मुँह छिपा कर घर की ओर ऐसी भागी कि उसने पीछे घूम कर देखा तक नहीं ।

× × ×

सबसे पिछली बेंच पर बैठा हुआ अख़्तर विचित्र मानसिक उलझन में फँसा था । आज सुबह वह उस मृत स्त्री को देख कर आया था और आज ही नयना से भी मिलने का वादा था ।

अख़्तर के मस्तिष्क में सैकड़ों विचार आते और चले जाते थे । उसको किसी तरह चैन न आता था । दिन भर उसका मन उलझा रहा । तस्वीर का यह दूसरा रुख़ उसकी दृष्टि के सामने एकाएक आ गया । उसकी शुद्ध आत्मा इस प्रकार के घृणित पाप का भार न सहन कर सकती थी । शिष्टाचार या नैतिकता का कोई भय उसके निकट निश्चित न था, बल्कि उसके अन्दर वासना से भी प्रबल कोई भाव ऐसा आ था, जो उसको इस हरकत से बाज़ रहने पर विवश करता था । वह नयना को अपनी वासना तृप्ति का साधन नहीं बनाना चाहता था । उसने अपने इस मानसिक परिवर्तन को मन ही-मन

अत्यन्त कायरतापूर्ण भी कहा, मगर फिर भी वह स्वयं को ऐसा कार्य करने पर आमादा न कर सका।

बार बार वही दृश्य अपने समक्ष घिनवनेपन के साथ उसकी दृष्टि के सामने आ जाता—भनभनाती हुई मक्खियाँ, फटे हुए चिथड़े, मुर्दा सा पथराई हुई आँखें, भयानक शोतल चेहरा, अधखुले औंधे मुँह में से बहती हुई राल, लज्जाजनक हद तक नग्न सा शरीर, ढीला ढाला पेट ! अख्तर को लगा मानो नयना का पेट फूल कर मटके के बराबर हो गया है। वह स्वयं उससे घबराता है, और फिर जैसे धारे धारे गुर्राती हुई आवाज़ें कह रही हों—"पापिन, कलमुँहा, कलंकिनी" "उससे विवाह नहीं कर सकता था पिता की एक घुड़की से उसका प्रेम काफ़ूर हो जाता। बेचारी फूले हुए पट वाली नयना कालेज से बाहर बने सेंटर पक्स के पास पागलों की तरह ऐसा अपनी आँखों का कीचड़ आँचल से साफ़ करती रहता है उफ़ !' अख्तर को नयना की उन आँखों का, जिनमें सतीत्व का अभिमान था, ध्यान आ गया और उसका उत्साह और भी शिथिल पड़ गया। उस अन्दे में जबरदस्त प्रेमी का मस्तिष्क इस समस्या का हल सोच निकालने में असमर्थ था—नयना का पवित्र प्रेम उसको इस नाच कर्म से बाज़ रहने पर विवश कर रहा था। वह सोचने लगा—'क्यों न इस स्वप्निल नयनों वाली कुमारी का ज्ञान मेरे लिये एक पवित्र रहस्य हो कर रह जाय ? —लेकिन आह ! वह अपनी भोली प्रेमिका को क्या मुँह दिखा सकेगा ?

× × ×

आकाश में चन्द्रमा चमक रहा था और रात का अन्धकार नयना की आँखों में शरण लिये हुए था—नयना आड़ू के वृक्ष के नीचे खड़ी थी।

लोहे का पुल एक बड़े मगरमच्छ की तरह प्रकट हो रहा था। मकानों से धुआँ उठ-उठ कर वायु-मण्डल में फैलता जा रहा था—नयना हाथ में एक कुल्हड़ लिये अख्तर की प्रतीक्षा कर रही थी। आज उसके लिये हलुआ बना कर लाई थी और एक सापी, जिससे वह स्वयं अपने हाथ से अपने प्रेमी को हलुआ खिलाना चाहती थी।

उसके तूफ़ानी भावों का बाँध टूट चुका था और उस इस पर नाज़ था ! आज वह सूर्योदय से पहिले घर नहीं जा सकती थी। यह सोचते ही वह आप ही आप सिमटने लगती। कितना गर्वपूर्ण था अख्तर का स्नेह।

अख़्तर अभी तक नहीं आया था। कहीं वह प्रतीक्षा करके लौट तो नहीं गया? मगर नहीं, सामने कालेज का बड़ा घण्टा दिखाई पड़ रहा था। उसके अन्दर पीले रंग की रोशनी हो रही थी। टेनिस कोर्ट के पास नदी की ओर मुँह किये कालेज के रेस्तराँ का काला मैनेजर सफ़ेद धोती बाँधे खड़ा था।

नयना उचक-उचक कर दूर जा कर गुम हो जाने वाली पगडंडी की ओर देख रही थी। घाट और मन्दिर पर सन्नाटा छाया था। कोई सुन्दर-सी बाँकी सूरत अभी प्रकट होगी—काला अचकन, सिर पर मख़मल की किश्तीनुमा टोपी (यह लाल रंग की टोपी अख़्तर के लाल सफ़ेद शरीर में खूब खिलती थी) छरहरा शरीर कोमलांग बिना मूँछ का प्रेमी मुस्कराता हुआ आता ही होगा। कनपटी के पास, टोपी से बाहर गहरे भूरे रंग के दो लाम लम्बे बालों के कोमल सी छवी घुमाता हुआ छोटा-सा अबोध प्रेमी यहीं मन्दिर के कोने में से निकलेगा। 'नयना शाहज़ादी!' वह कहेगा। उसको देखते ही नयना पीठ फेर लेगी रूठ जायेगी, नहीं बोलेगी। गुदगुदाने पर हँसेगी भी नहीं। बस यों ही मुँह फुलाये बैठी रहेगी। वह कहेगा—'देखो, नयना! सुनो, शाहज़ादा! भला तुमको प्यार करना भी पाप है?' नयना मन ही मन ओर से कहेगी—'नहीं, पाप नहीं है।' मगर कृत्रिम क्रोध प्रकट करती कहेगी—'तुमने इतनी देर क्यों लगाई?' अख़्तर आँखें झुका लेगा। वह आदेश के ढंग से कहेगी—'मुँह खोलो, आँखें बन्द करो।' फिर वह सीधी भर हलुवा उसके मुँह में ठूँस देगी और अख़्तर का अभी तक पता न था।

अख़्तर आज अपनी नयना को देखेगा। इसलिये नयना की तैयारियाँ पूर्ण थीं। मेहँदी, काजल फूलों के हार, धड़कता हुआ हृदय, काँपता हुआ शरीर, मद भरा स्वर—जैसे-जैसे देर होती जा रही थी, नयना के कोमल हृदय के भाव खोते जा रहे थे।

कितनी ही देर तक नयना अपने मेहँदी से लाल हाथों को देखती रही। फिर वह अपने चाँदी के कँगनों का निरीक्षण करती रही—यों ही आलस्य और सुस्ती के साथ पहाड़-सी घड़ियाँ काटती रही। मगर अख़्तर न जाने कहाँ रह गया था!

उसके केसरी गालों की ज़र्दी और भी बढ़ गई।

क्या वह सचमुच न आयेगा। खेतों की घबरा देने वाली निस्तब्धता में वह धीरे धीरे सिसकने लगी—आधी रात इधर, आधी रात उधर। उल्लू

चिल्लाने लगे और कौओं के भीषण शोर में नयना की सिसकियाँ डूब कर रह गईं।

वह वहीं झाड़ू के पेड़ के तने से पीठ लगा कर ऊँघने लगी। फिर वह कुरहद दोनों हाथों में थामे खाने से लगाये वहीं पर सो गई।

सुन्दर स्वप्नों में वह प्रेमी का मिलन देख कर प्रसन्न होती रही—गर्मियों की गरमी रात—'सूर्योदय से पहिले वह वापस नहीं आ सकेगी' उसके छोटे-से रसीले और रंगीले प्रेमी ने यही तो कहा था। मुर्गे बाँगने लगे।

नयना जाग उठी। उलझे हुए बाल, गर्द में सने हुए कपड़े हाथ में चींटियों से भरा हुआ कुरहद—उसकी पलकों पर आँसू मोतियों की तरह काँपने लगे।

× × ×

दूसरे दिन अख्तर ने बड़े बूढ़ों की हर सम्भव चेष्टा के बाद भी सैकड़ों बहानों से कालेज जाने से इन्कार कर दिया। इसलिये थोड़े दिन बाद उसे दूसरे शहर में शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेज दिया गया—उसने कसम खा ली कि वह कभी भी नयना को अपना मुँह दिखाने का साहस न करेगा। हारे हुए वीर सैनिक और सिंहासन च्युत सम्राट् की तरह वह दूर—नयना से बहुत दूर, चला गया।

शाहज़ादी नयना को जब अख्तर की सूरत कभी भी न दिखाई दी, तो उसने अपने नन्हे से हृदय के अपरिमित अभाव को अपने भोले-भाले नन्हे प्रेमी की बेवफ़ाई से पूरा कर लिया। उसने प्रेम के दरवाज़े सदा के लिये बन्द कर लिये। उसका विवाह हुआ, तो उसकी आत्मा पर पिछलापन छा गया। चाँदनी रात के एक मनोहर दृश्य की भाँति उस सुन्दर दिन चार की स्मृति को अपने हृदय की गहराइयों में सुरक्षित कर लिया।

पहिले वह अपने प्रेमी के लिये शाहज़ादी से दासी बनी और अब वह उसको अपना आराध्य देवता मान चुकी थी। लेकिन सच्ची श्रद्धा और आराधना करते हुए भी नयना ने अपने देवता का यह महापाप आजीवन क्षमा नहीं किया।

—सरदार बलवंत सिंह

शैतान

उस रात संयोगवश मैंने शैतान को स्वप्न में देख लिया। स्वाह मख्वाह दिखाई पड़ गया। मैं रात को अच्छा भला सोया था, न शैतान के बारे में कुछ सोचा था, न कोई चर्चा हुई थी। न जाने क्यों शैतान से सारी रात बातें होती रहीं। और शैतान ने स्वयं अपना परिचय नहीं दिया कि, "ख़ाकसार को शैतान कहते हैं।" यह मेरी अपनी काल्पनिक तस्वीर थी, जिसने कान में चुपके से कह दिया कि यह हज़रत शैतान हैं। छोटे-छोटे नोकदार कान, ज़रा ज़रा से सींग, दुबले पतले, बाँस जैसे लम्बे, एक लम्बी दुम, जिसकी नोक तीर के समान तेज़ थी। दुम का सिरा शैतान महोदय के हाथ में था। मैं डरता ही रहा कि कहीं वे चुभो न दें। एक अजीब बात और थी कि शैतान ने ऐनक लगा रक्खी थी।

अब सुबह चाय की मेज़ पर बैठे तो मेरी आँखें खुली-की-खुली रह गईं। रूफ़ी की शक्ल बिलकुल शैतान से मिलती थी। शक्ल क्या हरकतें भी वही थीं वैसा ही क़द, वही छोटा-सा चेहरा, लम्बी गर्दन, वैसी ही ऐनक, वही कुटिल-सी मुस्कराहट।

मुझसे रहा न गया। मैंने चुपके से रज़िया के कान में कह दिया—"रूफ़ी शैतान से मिलते हैं।"

वह बोली—"आपको क्या पता?"

मैंने कहा—"अभी-अभी तो मैंने असली शैतान को स्वप्न में देखा था।"

हुकूमत आपा रज़िया के साथ बैठी थीं। उन्होंने जो हमें काना फूसी करते देखा, तो बस बेक़ाबू हो गईं। तुरन्त पूछा—"क्या है?"

रज़िया ने बता दिया। हुकूमत आपा को तो ऐसा मौक़ा मिल भर जाय। बस मेज़ के गिर्द जो जो बैठा था उसे पता लग गया कि रूफ़ी का नया नाम रक्खा जा रहा है। लेकिन केवल स्वप्न देखने पर तो नाम नहीं रक्खा जा सकता था। वैसे रूफ़ी ने हमें तंग बहुत कर रक्खा था। बच्चों तक की इच्छा थी कि उनका कोई नाम रक्खा जाय।

हम चाय ख़त्म करने वाले थे। मुझे अपने आमलेट का इन्तज़ार था और रज़िया को काफ़ी का। कालेज में अभी आध घण्टा बाक़ी था, इसलिये मज़े मज़े से नाश्ता कर रहे थे। इतने में नन्हा हामिद भागा भागा आया। स्कूल

का वक़्त हो गया था इसलिये जल्दी में था। रूमी के बराबर बैठ गया। हामिद को बुख़ार हो गया था इसलिये उसकी हजामत ज़रा बारीक करवा दी गई थी। रूमी ने बड़ी ललचाई हुई दृष्टि से हामिद के सिर को देखा। जैसे ही हामिद ने खाना खाना शुरू किया रूमी ने एक हल्का-सा चपत हामिद के सिर पर जमा दी और मैंने तुरन्त रुखाई से कह दिया—"आख़िर, रूमी शैतान ही तो हैं बुज़ुर्गों ने कहा है कि अगर कोई नंगे सिर खाए, तो शैतान धौल मारता है।"

कुलसूम आपा चौंक कर हमारी ओर आकृष्ट हो गईं। उनको पता चलना था कि सारे कुटुम्ब को मालूम हो गया कि रूमी आज से शैतान कहे जायेंगे।

यह था सारा क़िस्सा, जिससे रूमी शैतान मशहूर हो गये। कुछ दिनों में हर एक की ज़बान पर यह नया नाम चढ़ गया। स्वयं रूमी ने इस नाम को बहुत पसन्द किया। बोले—"जब मैं हज करके लौटूँगा, तब मुझे शैतान न कहना। तब मैं इबलीस (शैतान का दूसरा नाम) बन कर आऊँगा।"

रूमी और मैं बचपन के दोस्त थे, और मुझे उनकी सारी कहानियाँ याद थीं।

जब हम बिलकुल छोटे-छोटे थे तब एक दिन रूमी को उनकी नानी अम्माँ इतिहास पढ़ा रही थीं। जब पत्थर और धातु के युग का ज़िक्र आया तो रूमी ने मुँह बना कर पूछा—"नानी-अम्माँ, आप पत्थर के ज़माने में कितनी बड़ी थीं?" फिर कहीं सुक़रात, बुक़रात का ज़िक्र आया, तो आप कहने लगे—'नानी अम्माँ, सुक़रात और बुक़रात कैसे थे?"

उन्होंने पूछा—'क्या मतलब तुम्हारा?"

आप कहने लगे—'आपने तो देखे होंगे?"

हर वक़्त रूमी को कुछ-न-कुछ सूझता रहता थी। हमारे स्कूल के सामने जो सड़क थी, उस पर अक्सर घोड़े गुज़रते रहते थे (सवारों सहित)। कोई सवार मज़े मज़े जा रहा है। एकाएक रूमी चिल्लाते—'अरे जनाब साहब सवार साहब! यह कुछ गिर पड़ा है—घोड़े की दुम गिर गई है उठा लीजिये, साहब, नहीं तो घोड़ा लँडूरा हो जायगा।' और सवार तुरन्त चौंक कर ठहर जाता और घूम कर देखता। ख़ास कर घोड़े की दुम तो अवश्य ही देखता।

एक दिन रूमी क्लास में ताता ले आए। पूछा—"यह क्या हरकत है?"

वह बोले—"अभी पिछले महीने मैंने पढ़ा है कि तोता सौ साल तक ज़िन्दा रहता है। मैंने सोचा कि लिखी लिखाई बातों का क्या भरोसा! खुद करके देख लेते हैं।"

मास्टरों से तो सदैव मुक़द्दमाबाज़ी रहती थी। एक दिन मास्टर साहब ने चहलक़दमी का अर्थ पूछा। किसीने जवाब न दिया। रूफ़ी उठ कर बोले—"दो बार बीस क़दमी।"

उनकी समझ में न आया। रूफ़ी बोले—"जनाब, चहल के मानी हैं चालीस और चालीस क़दमी से दो बार बीस क़दमी कहीं अच्छा लगता है।"

भूगोल के अध्यापक महोदय ने एक दिन रूफ़ी से पूछा—"अगर तुम पूर्व की ओर मुँह करके दोनों हाथ फैला दो, तो तुम्हारे बाएँ हाथ पर क्या होगा?"

रूफ़ी ने बड़ी मुसमुसी शकल बना कर कहा—"अँगुलियाँ।"

और गणित में तो बिलकुल फिसड्डी थे। सवाल पूछा जा रहा है रुपये के सम्बन्ध में, जवाब निकलता है महीनों में। इसी तरह महीनों का जवाब कुत्ते और बिल्लियों में निकल रहा है।

पूछा—"यह क्या बदतमीज़ी है?"

जवाब मिलता—"जनाब, मैं क्या करूँ? यह कमबख्त जवाब इसी तरह आया था।" और फिर जब मज़दूरी और समय का सवाल निकालते, तो जवाब आता सवा तीन लड़के या साढ़े उन्नास स्त्रियाँ। इस पर मास्टर साहब बहुत चिढ़ते। एक दिन रूफ़ी ने जवाब निकाला '२/३ औरत।' मास्टर साहब गरज कर बोले—"नालायक, २/३ औरत भी कभी देखी है आज तक?"

रूफ़ी सिर खुजला कर बोले—"जनाब, कोई लड़की होगी!"

और जब दूसरी कक्षा में इन्स्पेक्टर साहब मुआयना करने आए, तो वह रूफ़ी से बहुत खुश हुये और इनाम दे कर गये। उन्होंने पूछा—"अगर पानी ठण्डा किया जाय, तो क्या बन जायेगा?"

हमने सोचा अब रूफ़ी कह देंगे कि बर्फ़ बन जायेगा।

रूफ़ी बोले—"कितना ठण्डा किया जाये।"

वह बोले—"बहुत ठण्डा किया जाये।"

रूफ़ी सोच कर बोले—"तो वह बहुत ठण्डा हो जायेगा।" 'बहुत' शब्द को रूफ़ी ने बहुत खींच कर कहा।

अगर और भी ठण्डा किया जाय?'

"तो फिर वह और भी ठण्डा हो जायेगा,"—रूफ़ी ने इन्स्पेक्टर साहब के

स्वर की नकल उतारते हुए कहा।

इन्स्पेक्टर साहब मुस्कराने लगे। बोले—"अच्छा, अगर पानी को गर्म किया जाये, तब ?"

"तब वह गर्म हो जायेगा।"

"नहीं, अगर हम उसे बहुत गर्म करें और देर तक गर्म करते रहें, तब ?"

रूफ़ी कुछ देर सोचते रहे, फिर एकाएक उछल कर बोले—"हम जानते चाय बन जायेगा!"

इन्स्पेक्टर साहब ने बहुत ज़ोर का ठहाका लगाया। मास्टरों ने कोशिश की कि कहीं उन्हें इधर-उधर ले जायँ किन्तु वे पूर्ववत् वहीं खड़े रहे और रूफ़ी से सवाल किया—"बिल्ली की कितनी टाँगें होती हैं?"

"क़रीब क़रीब चार।"

"और आँखें ?"

"कम से कम दो।"

"और दुमें ?"

"ज़्यादा से ज़्यादा एक!" इन्स्पेक्टर साहब हँस हँस कर लोटन कबूतर बने जा रहे थे।

"और कान ?" उन्होंने पूछा।

"तो क्या सचमुच आपने अब तक बिल्ली नहीं देखी ?" रूफ़ी मुँह बना कर बोले। और इन्स्पेक्टर साहब हँसते-हँसते लुढ़क गये।

उन दिनों हम और रूफ़ी दोस्त थे।

× × ×

मैं जज साहब के यहाँ रहता था। पहले भी हम वहीं रहते थे। पर अब्बा की बदली हो गई और वह ऐसी जगह बदल कर गये जहाँ कालेज तो एक ओर, कोई स्कूल तक न था। जज साहब ने होस्टल न जाने दिया। इधर उनकी बेगम ने अम्मा से पूछ लिया था। अब मैं उनके यहाँ रहने लगा। रूफ़ी भी वहीं रहते थे। जज साहब से उनकी कोई दूर की रिश्तेदारी थी। मेरा अनुमान था कि रूफ़ी उनके भतीजे थे। कुटुम्ब के सारे लोग मुझे अच्छे लगते थे और उनमें एक हस्ती तो मुझे सबसे अधिक प्रिय थी—वह थी रज़िया! और जिनसे मैं डरता था वह थीं रज़िया की बड़ी बहिन, जिनका असली नाम तो ख़ुदा जाने क्या था, सब बच्चे उन्हें हुकूमत आपा कहते थे। मेरा [illegible] आयु का थीं या

शायद कुछ बड़ी ही होंगी। यदि यह वहाँ न होतीं, तो मैं और रज़िया कभी के बड़े गहरे दोस्त बन गये होते। लेकिन मैं उन्हें एक आँख भी न भाता था।

सारा दिन कालेज में बीतता। शाम को खेलने चला जाता और रात को सिनमा। रज़िया से बातें करने का समय ही न मिलता। हफ्ते भर में एक-दो बार मौक़ा मिलता था वह भी हुकूमत आपा की भेंट हो जाते। बनती तो उनकी किसीसे भी न थी हाँ, मुझसे और रूफ़ी से ख़ास लगावट थी! मैं तो चुप हो जाता, किन्तु रूफ़ी वह जवाब देते कि हुकूमत आपा खिसिया कर रह जातीं।

सारे दिन खटती झलकतीं और दूसरों की व्यर्थ आलोचना करती रहतीं। किसी बात का शहर में ढिंढोरा पिटवाना हो तो जा कर हुकूमत आपा से कह दीजिये। बस, हर एक को पता लग जायेगा।

मैं बिलकुल न समझा कि आख़िर इनकी पालिसी क्या है, इनके उद्देश्य क्या हैं? रूफ़ी का ख़याल यह था कि यह अपना भी समय नष्ट कर रही हैं और दूसरों का भी। और मुझे उनका यह ख़याल बिलकुल सच मालूम होता था।

उधर मैं और रूफ़ी बड़े गहरे मित्र थे। मैंने कोई बात भी उनसे छिपा कर न रक्खी थी यहाँ तक कि रज़िया के विषय में भी सब कुछ उन्हें बता रक्खा था। और जो बातें हम आपस में करते वह तुरन्त मैं रूफ़ी से कह देता और सदैव उनकी सलाह से काम करता। रूफ़ी बड़े प्रेम से मुझे बताते कि आज रज़िया से यह कह देना आज यह पूछ कर देखना, आज यह करना, आज वह करना। और मैं उसी तरह करता।

× × ×

हमें एक साहब ने सिनेमा देखने के लिये निमन्त्रण दिया। बिलकुल नये दोस्त बने थे। वह भी इस तरह कि एक दिन अपने पिता के साथ वह जज साहब से मिलने आये। वहाँ मैं और रूफ़ी बैठे थे। उनके पिता रूफ़ी की बातों से फड़क उठे, बोले—"क्यों, बेटे, आज-कल तुम क्या करते हो?'

रूफ़ी बोले—"जी, आज कल मैं बी० ए० का इम्तहान दिया करता हूँ।" और वास्तव में रूफ़ी न जाने कितने वर्षों से बी० ए० का इम्तहान दे रहे थे।

फिर वह बुज़ुर्ग जज साहब से बोले—'क्या बताऊँ, कितना जी चाहता है कि आप को फोन करूँ, मगर नम्बर भूल जाता हूँ। आज-कल तो कुछ भी

याद नहीं रहता। पहले याद्दाश्त के तौर पर एक नोट-बुक में ऐसी बात लिख लिया करता था लेकिन अब वह नोट बुक ही कहीं भूल जाता हूँ।'

रूमी बोले—"जी फ़ोन का नम्बर याद करने के तरीके मैंने एक किताब में पढ़े थे। इजाज़त हो तो अर्ज़ करूँ?"

वह बोले—"ज़रूर।"

रूमी बोले—"उसमें लिखा था कि पहले तो सिर्फ़ ऐसे लोगों से रस्मो-राह बढ़ाना चाहिये, जिनके फ़ोन नम्बर बिलकुल आसान हों। जैसे—पाँच हज़ार दो हज़ार या चार सौ बीस। अगर यह न हो सके, तो नम्बर का तौर से मुनाफ़ा (अपचयन) करना चाहिये। जैसे—छ सौ पैंतालीस को याद करना बिलकुल आसान है। अगर यह समझ लिया जाय कि इसमें पचपन जमा कर दिये जायें, तो सात सौ बन जायेंगे और अगर सात सौ में तीन सौ जमा कर दिये जायें तो एक हज़ार बन जायेगा। इसी तरह अगर छ सौ पैंतालीस को छ सौ पैंतालीस में गुणा कर दिया जाये, तो सिर्फ चार लाख सोलह हज़ार पचास बन जायेगा और अगर हम याद रक्खें कि छ सौ पैंतालीस सिर्फ छ रुपये चार आने और पाँच पाई हैं, तो उसे कभी नहीं भूल सकते।"

इधर वह बुज़ुर्ग हँसी से लोट पोट हुए जा रहे थे।

रूमी कहते जा रहे थे—"अगर यह भी न हो सके, तो फिर यही ठीक होगा कि इतिहास की पुस्तक खोल ली जाय और उस नम्बर का सन् तलाश किया जाय। जैसे छ सौ पैंतालीस में से अगर [illegible] का अंक उड़ा दें। तो पैंतालीस रह जाता है, और सन् पैंतालीस ईसा के पहले सीज़र को हमेशा के लिये दुनिया का डिक्टेटर मान लिया गया था। उधर अगर उसमें एक हज़ार जोड़ दें तो इसी सन् सोलह सौ पैंतालीस में नैरोबी की लड़ाई हुई था।"

बस, उसी दिन से वह बुज़ुर्ग और उनके सुपुत्र हमारे दोस्त बन गए।

सिनेमा में देर थी। मैं रूमी के कमरे में गया। देखा कि बैठे हामिद को पढ़ा रहे हैं। पूछा—"यह क्या?"

बोले—"बेगम कह कर गई हैं।"

मैं भी पास बैठ गया।

रूमी बोले—"क्यों भाई, दुनिया में कुल कितने ऊँट होंगे?"

वह चुप रहा।

"अच्छा, क्या रोमन लोग गाजरें खाते थे?"

"पता नहीं।"

"एक साल में कितने हफ़्ते होते हैं?"

नन्हों ने हिसाब लगा कर कुछ यजब उलटा सीधा सा जवाब निकाल दिया।

"और एक मील में कितने घन्टे होते हैं?"

उसने फिर कोई जवाब निकाल दिया। अब रूफी नाराज़ हो कर बोले—"क्या तुम्हें सचमुच पता नहीं कि रोमन लोग गाजरें खाते थे या नहीं?"

"जी नहीं," नन्हें डर कर बोला।

"और यह भी पता नहीं कि दुनिया में कितने ऊँट हैं?"

"जी नहीं।"

"जेहालत की हद है! क्या तुम्हें सचमुच पता नहीं?" रूफी जोर से बोले।

"जी नहीं!" नन्हें सहम गया।

"मुझे खुद पता नहीं," रूफी बोले। और नन्हें को छुट्टी मिल गई।

इतने में रूफी के नाम एक ख़त आया, जिसे पढ़ कर उन्होंने बहुत बुरा मुँह बनाया। नाक भौं चढ़ाई, कुछ देर टहलते रहे, फिर बोले—"कुछ और भी सुना? छोटे भाई साहब ने मूँछें रख ली हैं। कितना मना किया था उसे। और छोटी छोटी दाढ़ी भी लगा ली है। गोया दाढ़ी, मूँछों की खेती हो रही है।"

तुरन्त नौकर को बुलाया और एक तार लिख कर दिया कि भेज दे। मैंने तार का मज़मून पढ़ा। लिखा था—"Shave At once"। वह तार उसी समय भेज दिया गया।

हम सिनेमा के लिये तैयार तो हो गए किन्तु वह महाशय अभी तक गायब थे। रूफी ने फ़ोन करना चाहा, लेकिन नम्बर न मिला। आख़िर खीझ कर बोले—"तो किसी और को फ़ोन कर दें?"

"किसी और को?"

"हाँ क्या हर्ज है? किये देते हैं।" उन्होंने न जाने कौन से नम्बर को बुला लिया। मैं सरक कर चोंगे के निकट आ गया।

"कौन साहब बोल रहे हैं?" रूफी बोले।

"ख़ाकसार है अब्दुल मजीद 'मजबूर'।"

"ओह ! अब्दुल मजीद 'सरयूफ़ !' तो गोया आप शायर हैं ?" यद्यपि उन्होंने साफ़ 'मजबूर' कहा था।

'जी नहीं, मजबूर !" वह बोले।

"माफ़ कीजिये, मैं तो हरगिज़ यह बेअदबी नहीं कर सकता। आप ज़रूर मज़ाक कर रहे हैं, यानी अब्दुल मजीद 'ज़ायूर' !'

"ओफ़्फ़ोह जनाब ! मजबूर मज बू ऊ र।" वह बोले।

'अच्छा तो मजबूर साहब हैं ! तो आप कुछ दिलसे भाई हैं ?'

'चार हैं हम !' वह बोले।

"अगर आप पाँच होते तो हमारा क्या बिगाड़ लेते !" रूफ़ी बोले और जल्दी से टेलीफ़ोन का चोंगा रख दिया।

इतने में वह महाशय आ गए और हम सिनेमा चल दिये। पूछा—"कौन सी पिक्चर है ?"

वह बोले—"इन्साफ़ की तोप !'

मैंने विरोध प्रकट किया कि क्रिकेट आदि जैसा दिलचस्प चीजें छोड़ कर देसी फ़िल्म देखना सरासर हिमाक़त है।

रूफ़ा बोले—"चलो अब तैयार हो गए हो, तो चाहे 'ख़ूँख़ार फुलझड़ी' ही क्यों न हो ज़रूर देखेंगे।"

अब रास्ते में उन महाशय ने अपने पिताजी के सम्बन्ध में जो बातें शुरू की हैं, तो हम तंग आ गये। उनकी बातें समाप्त होने ही में न आती थीं। उनके पिता जी मुनसिफ़ थे, अच्छे खासे भारी भरकम मनुष्य थे। वह उनकी तारीफ़ें कर रहे थे कि किस तरह उन्होंने लम्बी लम्बी सज़ा वाले अपराधियों को छोड़ दिया था और अच्छे भले आज़ाद लोगों को क़ैदख़ाने में भेज दिया था और अब सारे देश में उनके आश्चर्यजनक इन्साफ़ का डंका बज रहा था !

आख़िर तंग आ कर रूफ़ी बोले—"तो वह बहुत अच्छा इन्साफ़ करते हैं ?"

"ज़रूर !" जवाब मिला।

"यानी बहुत ही ऊँचे दर्जे का इन्साफ़ करते हैं वह !"

"जी !"

"फिर तो वह 'इन्साफ़ की तोप हुए," रूफ़ी ने कहा।

और मेरे लिये हँसी रोकना मुश्किल हो गया।

× × ×

कितनी बार मेरी इच्छा हुई कि हुकूमत आपा से पूछूँ—'आख़िर आप

चाहती क्या है ? हम क्या करें, जो आप के इस अमीब-गरीब कोप से बच सकें, जिसके हम हर समय शिकार हुआ करते हैं।' चौबीसों घंटे हाथ धो कर (बल्कि हाथ-मुँह धो कर) वह मेरे पीछे पड़ी रहती थीं। रज़िया की तरफ़ मैंने ज़रा भी आँख उठाई कि आफ़त आ गई।

इसमें मेरा क्या क़सूर था ? घर में एक अच्छी लड़की है, जो इतनी प्यारी लगती है, तो उसे क्यों न देखें ? अगर यही मरज़ी है, तो हुकूमत आप रज़िया को किसी सन्दूक में क्यों नहीं बन्द कर देतीं, जिसमें कि कोई न देख सके ? मेरे सम्बन्ध में तरह तरह की आलोचनाएँ करती रहती थीं। पहले तो मैं बहुत विरक्त हो जाता, किन्तु बाद में मुझे उनकी आलोचनाएँ स्टैन्डर्ड से गिरी हुई मालूम होने लगी और मैंने उनका ख़याल ही छोड़ दिया। उनकी आलोचनाएँ भी सुनिये—'शौक़ीन लड़का है, रंगीन मिज़ाज है, रंग बिरंगे कपड़े पहिनता है, ख़ुशबू लगाता है ! इसका सीना काफ़ा चौड़ा है, लेकिन चेहरा कुछ दुबला है। इसका कोई विश्वास नहीं। (न कीजिये विश्वास, किस मस ख़रे ने ख़ुशामद की है आपसे !) हर वक्त बाज़ुओं पुट्ठों को टटोलता रहता है (ख़ूबसूरत पुट्ठे हैं, क्यों न टटोले !), बेज़ारी को बज़ारी कहता है। (यह आपके कानों की शरारत है।) हर वक़्त अकड़ कर चलता है (तो क्या कुबड़ा हो कर चला करूँ ?), रज़िया के बारे में सोचता रहता है, उसे घूरता रहता है, और उसीकी बातें करता है (रज़िया जो अच्छी लगती है !) मुझे ज़रा भी अच्छा नहीं लगता। (मुझे भी आप ज़रा भी अच्छी नहीं लगतीं !)

और हुकूमत आपा का तकिया कलाम था यह वाक्य, 'मुझे पहले ही पता था' ('पहले' शब्द पर ख़ूब ज़ोर दे कर !) एक दिन मैंने रज़िया के नाम की अँगूठी पहिन ली। हुकूमत आपा ने देख ली। बोलीं—"मुझे पहले ही से पता था !"

एक दिन एक नाटक में लगातार दो घण्टे तक रज़िया को देखता रहा और पाट ग़लत-सलत कर गया। हुकूमत आपा ने देख लिया। चिल्ला कर बोलीं—"मुझे पहले ही से पता था !" और रूफ़ी बोले—"जब आप को हमेशा पहले ही से पता रहता है, तो आप हमें टोक क्यों नहीं देतीं ?"

रूफ़ी उन्हें आड़े हाथों लेते थे। एक दिन बेगम साहिबा का कोई गहना खो गया। हम सब ढूँढ़ रहे थे। एकाएक रूफ़ी बोले—"आहा ! हुकूमत, तुम्हें तो पता होगा कि ज़ेवर कहाँ है ?"

"मुझे क्या पता ?" वह बोली।

"क्यों, तुम्हें तो पहले ही से पता रहा करता है न !"

फिर एक दिन एक अजीब सा मामला हो गया था, जो हमारी समझ में बिलकुल न आता था। जज साहब भी पूरा ज़ोर लगा चुके। रूज़ी बोले—"लो, हुकूमत, बता दो इसका हल।"

सब हुकूमत आपा के पीछे पड़ गए कि बताओ क्या है हल।

रूज़ी बोले—"भाइयो और बहिनो ऐसे मौक़ों पर हमेशा हुकूमत से सलाह लिया कीजिये। यह पहुँची हुई और अक्लमंद वाली औरत हैं, और इन्हें हर चीज़ का पहले से ही पता रहता है।"

मगर यह सब होने पर भी आपा की यह वाक्य बोलने की आदत बनी रही।

रूज़ी मुझे रज़िया के बारे में तरह तरह की सलाहें दिया करते, किन्तु सदैव मुझे विरक्त कर देते। सब से पहले तो यह सवाल पैदा होता था कि आख़िर मेरे पास क्या सबूत है कि रज़िया को मैं अच्छा लगता हूँ। निस्सन्देह, कोई सबूत न था। इसलिये यह सिर्फ़ एकतरफ़ा कार्रवाई बताई जाती थी। किसी को पसन्द करने से कुछ नहीं बनता जब तक वह भी पसन्द न करे। अतएव उनके सिद्धान्त के अनुसार मैं और रज़िया बिलकुल अपरिचित थे।

वह हमेशा यही कहा करते—"भैया, दुनिया बहुत बड़ी है। कहीं और जा कर कोशिश कर। रज़िया से भी अच्छी लड़कियाँ मिलेंगी।" और उनकी यह बात मुझे तनिक भी पसन्द न आती।

एक दिन बोले—"रज़िया की निगाह कमज़ोर है, उसे दूर की चीज़ें धुँधली दिखाई पड़ती हैं।"

"तुम्हें क्या पता ?"

"ईद का चाँद उसे नज़र न आ सका, और इसलिये उसने जज साहब की ऐनक से देखा था।"

"फिर ?"

"फिर क्या ? शादी तक तो यह क्या ऐनक लगाएगी हाँ, शादी के बाद फ़ौरन लगा लेगी।"

ग़रज़ कि इसी तरह की उल्टी-सीधी बातें वह सुना जाते।

उसी दिन शाम को रूज़ी और हुकूमत आपा की बहस छिड़ गई। विवाद

का विषय था 'ऐनक' । न जाने कौन ऐनक के [illegible]
विरोध में ! कमरे में एक ग़दर मची थी ।

मैं कुछ देर तक बाहर सुनता रहा, फिर [illegible]

रूक़ी बोले—"तो गोया फ़ाक़मार जीत हो गए ।"

हुकूमत आपा बोलीं—"ताज्जुब है कि पाँच [illegible]
क़ायल नहीं हुये !"

"पाँच घण्टे की बहस के बाद !" मैंने पूछा ।

"हाँ भई, पाँच घण्टे तक बहस होता रहा । [illegible]
दस मिनट ख़ामोशी रही, और पाँच मिनट में [illegible]"

और हुकूमत आपा ख़फ़ा हो सो गईं, क्योंकि वह [illegible]
हम सब ख़ामोश हो गए ।

इतने में 'टन-टन' करता हुआ आग बुझाने [illegible]
गया ।

हुकूमत आपा बोलीं—"कहीं आग लगी है, [illegible]

इतने में दूसरा ! इसके दूसरी बार टन टन [illegible]
बोलीं—"ओह ! उधर आग लगी है ।"

रूक़ी सिर झटका कर बोले—"दोनों तरफ़ है [illegible]

और हुकूमत आपा नाराज़ होकर चली [illegible]

"यार, यह तो इस तरह ग़ायब हो गए [illegible]
निकल जाए ।"

"क्या मतलब ?"

"ऐसे ग़ायब हुईं जैसे गधे के सिर से [illegible]

कुछ देर यों हा बैठे रहे फिर वह [illegible]
मैंने सिर हिला कर 'हाँ' कहा ।

बोले—"कोई नौकर आये, तो सब [illegible] पसे

इतने में शुम्मन (ख़ानसामा) गुज़रा । [illegible]
कुल्लू और म[illegible] नौकर थे जिन्हें बच्चे [illegible] गा
इसलिये हमने उनकी ड्यूटी दिन को [illegible] हुये
रूक़ी ने आवाज़ दी—"शुम्मन [illegible]
उसने सुना ही नहीं । रूक़ी [illegible] एक
रूक़ी बोले—"मैं गूंगा जिसे [illegible] जाये

[illegible] "अरे भाई, देव (दानव) ऐसे वैस थोड़े ही आ [illegible] अँगूठी तो घिसनी पड़ेगी।"

[illegible] फिर गुज़रा। हमने बुलाया, तो वह आ गया। [illegible] मैंने अँगूठी घिसी थी। तुम आए ही नहीं?"

[illegible] मसख़रा था, पर उस समय अत्यन्त उदास दिखाई पड़ [illegible] मालूम हुआ कि उसका तार आया है घर से, जिसमें तुरन्त बुलाया [illegible] है।

"[illegible] तो मैं ज़रूर आ जाऊँगा, नहीं तो आप बुला लीजियेगा," वह बोला।

"हाँ, हाँ, ज़रूर बुला लेंगे," मैंने विश्वास दिलाया।

"अच्छा आप किस पते पर ख़त लिखेंगे? मैं तो न जाने कहाँ कहाँ की ख़ाक छानता फिरूँगा।"

अब बताइये इसका क्या जवाब हो सकता था?

[illegible] बोले—"भई इसका तो यही इलाज है कि तुम अपनी मूँछ का एक बाल यहीं दे जाओ ताकि जब हम तुम्हें बुलाना चाहें, तो बाल को धूप में रख दें। उससे आँधी आयेगी, फिर पानी और बाद में तुम उड़ते हुये आ जाओगे।"

वह खिलखिला कर हँस पड़ा, और बोला—'आलीजनाब दुरुस्त!'

जब हमने हँसी ख़तम की, तो देखते हैं कि [illegible] कमरे में नहीं थे। दूसरे दिन फिर इसी प्रकार की घटना घटी। मुझे सन्देह-सा हो गया। मैंने रज़िया से कहा। हमने एक योजना सोची और सुबह की चाय पर रज़िया ने जान बूझ कर आँखें बंद कीं और बिजली की तरह [illegible] कमरे से निकल गए यद्यपि अभी चाय शुरू भी नहीं हुई थी। मैंने सबको बता दिया कि चूँकि [illegible] आलीजनाब [illegible] भागते हैं और पहिले भी कई प्रमाण दिये जा चुके हैं, इस लिये आज से वह पूरे शैतान हुए और भविष्य में उन्हें कोई [illegible] न कह सब शैतान कहें—यानी अगर सामने हिम्मत न पड़े तो कम-से-कम पीछे तो कहा ही करें।

बस उसी दिन से [illegible] शैतान मशहूर हो गए।

× × ×

वह एक अत्यन्त मनोहर चाँदनी रात थी। पूर्ण चन्द्र वृक्षों के झुरमुट से

उदय हुआ था। वायु के शीतल झोकों से पौधे झूम रहे थे। मैं फ़ौवारे के पास बैठा था। विचार धारा को जहाँ कहीं से भी शुरू करता था, रज़िया पर टूटती थी। एकाएक जो देखा, तो रज़िया प्लाट में बैठी चाँद को ताक रही थी। बिलकुल गुम सुम बैठी थी।

यह पहिला बार नहीं हो रहा है। उन दिनों बहुधा मैं उसे एकान्त में बैठे देखा करता था। आख़िर, किसके सम्बन्ध में सोचा करती है यह? मैं बेचैन हो गया। मुझसे न रहा गया। पहुँचा सीधा शैतान के कमरे में। वह सो गए थे। उन्हें ज़बरदस्ती जगाया।

"अरे!' मेरे मुँह से निकल गया —"तुम ऐनक लगा कर सोते हो?"

'कल ऐनक लगाना भूल गया था। रात भर सपने बहुधा धुँधले धुँधले दिखाई पड़े।"

मैं इतना बेचैन था कि मुझसे हँसा भी न गया। मैंने जल्दी से सब कुछ उन्हें बता दिया, और कहा— 'भई, रज़िया को किसीका ख़याल ज़रूर है। लेकिन यह पता नहीं कि वह भाग्यवान् है कौन। वैसे वह आज कल चौबीसों घण्टे किसीके बारे में सोचती रहती है।"

देर तक हम इसी प्रकार की बातें करते रहे। अब प्रश्न यह था कि यह कैसे हल हो। और वैसे मैं स्वयं यह जानता था कि उसे मेरा कितना ख़याल है।

आख़िर बड़े सोच विचार के बाद शैतान बोले—"भई, इसके लिये थोड़ी सी हिम्मत करनी पड़ेगी।"

'वह क्या?"

"अगर मेरी मानो, तो यार तुम ख़ुदकुशी (आत्म हत्या) कर लो।"

'ख़ुदकुशी कर लूँ!' मैं चौंक पड़ा।

"असली नहीं नक़ली ख़ुदकुशी। वैसे हम यही ज़ाहिर करेंगे कि तुमने सचमुच ख़ुदकुशी कर ली है। फिर देखेंगे कि रज़िया क्या करती है।"

मैंने साफ़ इनकार कर दिया। बेग़म साहबा को पता ज़रूर चल जायेगा, और अगर अम्मी को लिख दिया तो आफ़त आ जायगी। और वैसे ख़ुदकुशी करना है भी फ़िज़ूल-सा।

शैतान बोले—'बेग़म साहबा को हरगिज़ पता न चलने देंगे। इस एतवार को सारा कुनबा एक पार्टी में जा रहा है। रज़िया का इम्तहान पास्ले

इतना है, वह यहीं रहेगा। बस मैं इतना माप पा कर तुम गुदगुदा कर देना। सारा इन्तज़ाम मैं कर दूँगा।"

यही सारी जिरह के बाद शैतान ने मुझे बहका दिया। अगले दो दिन हमने खूब रिहर्सल किये।

इतवार का दिन आया। रज़िया के सिवा सब पार्टी में चले गए। मुझे और शैतान (रज़ा) को भी बहुत कहा गया, किन्तु हमने क्रिकेट मैच का बहाना कर दिया।

कई छोटी मोटी बातों के बाद (जिनका उल्लेख जान बूझ कर नहीं किया जा रहा है) मैंने आत्म हत्या कर ली। एक सोफ़े पर लेट गया। मेरा एक हाथ नीचे लटक रहा था और फ़र्श पर अँगुलियों के पास एक ख़ाली शीशी पड़ी थी, जिस पर 'ज़हर' लिखा था। शैतान ने मेरी ओर देखा। बोले— "तैयार हो?"

मैंने कहा—"हाँ।"

और उन्होंने एक करुण पन्चम स्वर में शोर मचाना शुरू कर दिया, जिस पर मुझे हँसी आ गई। रज़िया भागी भागी आई। मैंने तुरन्त आँखें बन्द कर लीं परन्तु पलकों से सब कुछ देखता रहा। शैतान ने तुरन्त उसे बताया कि मैंने आत्म हत्या कर ली है। रज़िया ने पहिले शीशी को उलट पलट कर देखा, फिर मेरी नाड़ी छुआ। भला मैं नाड़ी कैसे बन्द कर सकता था। बोली— 'अरे! अभी थोड़ी सी जान बाकी है।" घबराई हुई साथ के कमरे में गई। मुझे उसकी आवाज़ साफ सुनाई दे रही थी। उसके स्वर में घबराहट या बेचैनी थी। वह डाक्टर साहब को फ़ोन कर रही थी, बल्कि विनय कर रही थी। उसके शब्द थे— 'ख़ुदा के लिये जल्दी आइये, ज़िन्दगी और मौत का सवाल है।' और मेरा दिल आनन्द से खिल उठा। किसकी ज़िन्दगी और मौत का सवाल है? मेरी ज़िन्दगी का या रज़िया की ज़िन्दगी का? या शायद दोनों का। मैंने शैतान को इशारा किया! वह मुस्कराए। रज़िया घबराई हुई आई और मेरा सिर दबाने लगी। अब जो उसकी अँगुलियाँ गरदन तक पहुँची हैं, तो मुझे गुदगुदी लगी। पहले तो मैंने बहुत रोका किन्तु जब न रह सका, तो खिलखिला कर हँस पड़ा और उठ कर बैठ गया।

"हायँ!" रज़िया के मुँह से निकला।

"हायँ!" शैतान ने चिंघाड़ कर कहा।

"देखा, डरा दिया न तुम्हें!" मैं बोला।

"सचमुच मैं तो डर ही गई थी।"

और मेरा मारे प्रसन्नता के बुरा हाल हो गया।

तो इसके अर्थ यह हुए कि रज़िया को मेरा बहुत ख़याल था। उसने जो कहा था कि ज़िन्दगी का सवाल है।

"तो क्या तुम सचमुच बहुत घबरा गई थीं?" मैंने बन कर पूछा।

"हाँ, कुछ घबरा ही गई था।" वह मुस्करा रही थी।

"कुछ क्या? यों कहो कि पूरे तौर पर घबरा गई थीं, बहुत बुरी तरह घबरा गई थीं।"

"और इतनी तो नहीं घबराई। दरअसल खुदकुशी अच्छी तरह नहीं की गई, इसमें कुछ भूलें हो गईं।"

"अब चाहे तुम कुछ भी कहो, एक बार तो बहुत ही परेशान हो गई थीं।"

"जैसे इसी ज़हर की शीशी को ले लीजिये," वह बोली—"माना कि इसमें कभी टिंक्चर आयोडिन आई थी। लेकिन दो साल से इसमें बादाम का तेल पड़ा था और अगर बादाम के तेल से खुदकुशी हो सकती है, तो यह अर्से से ख़ाली पड़ी थी।"

"लेकिन तुमने फोन तो बड़ी घबराहट में किया था।" मैं खिसियाना हो चला था।

"अच्छा, बताइये, फोन है किस कमरे में?"

"ड्राइंग रूम में,"—मैंने कहा।

"और मैंने फोन किस कमरे में किया था? साथ के कमरे में न?"

"हाँ?"

"और साथ का कमरा है गोदाम। अब बताइये, वहाँ टेलीफोन कहाँ से आ गया?"

और मुझे विश्वास हो गया कि मैं रज़िया को बिलकुल अच्छा नहीं लगता, बल्कि शायद बुरा ही लगता होऊँ।

× × ×

अगले दिन हम सब एक नतक का नाच देखने गये। बहुत प्रसिद्ध नतक था। असंख्य लोग इसने आये थे। पहले तो इधर उधर की बातें होती रहीं, फिर नाच शुरू हुआ। आर्केस्ट्रा बजने लगा। पहले तो वह चुपचाप खड़ा रहा,

फिर उसने एकदम से हवा में एक छलाँग लगाई और कलाबाज़ियाँ सी खानी शुरू कर दीं।

मन्नी हैरान हो कर बोला—"भैया, यह पत्थर का बुत अब तो खूब हिल रहा है।'

अब जो उस नक़ली आदमी ने हाथ-पाँव मारना शुरू किये हैं, तो मन्नी घबरा गई। बोला—"भैया, यह आदमी क्या कर रहा है?'

हुकूमत आरा बोली—'नाच रहा है।'

मन्नी बोला—"इस तरह नाचा करते हैं क्या?

हुकूमत आरा बोली—'चुपचाप देखती रहो। इसे 'क्लासिकल' नाच कहते हैं।'

मन्नी मचल गई—'नहीं ना, यह आदमी तो कुछ और तमाशा कर रहा है।"

शैतान बोले—'मन्नी, बात असल यह है कि सुबह को 'क्रूशन साल्ट' लिया था और अब इसे क्रूशन फ़ीलिंग हो रहा है।'

शैतान ने आज छींट का अँगरखा पहिन रक्खा था और सब लोग उन्हें ही देख रहे थे। विश्राम की घण्टी बजी और मैं तथा शैतान बाहर गये। छींट का अँगरखा सचमुच एक अनोखी-सी चीज़ थी। जो देखता था ठहर जाता था। कुछ लोगों ने तो सचमुच हँसना शुरू कर दिया। शैतान रुक गये, और पीछे घूम कर बोले—' साहबान आपका हँसना सिर आँखों पर। लेकिन आप मेहरबानी करके जल्दी से हँस लीजिये, क्योंकि मुझे एक ज़रूरी काम है और आपका शौक़ पूरा किये बग़ैर मैं यहाँ से नहीं जा सकता।

वे बेचारे शरमा गये।

"तो आप हँस चुके क्या?" शैतान बोले।

वे चुप रहे।

' क्या मैं जा सकता हूँ?'

उनमें से एक ने सिर हिला दिया।

हम जब वापस हुये, तो अभी अच्छा-खासा दिन बाकी था। बाग़ से गुज़रते हुये शैतान रुक गये। माली को बुलाया और मिट्टी का एक ढेर दिखा कर बोले—"यह ढेर यहाँ नहीं होना चाहिये।"

'सरकार, यह बिना कई आदमियों के बाहर नहीं फेंका जा सकता।"

"वाह! मामूली सा काम है। एक बड़ा सा गड्ढा खोद लो और उसमें यह मिट्टी दबा दो।"

बात माली की समझ में आ गई। वह काम में लग गया। कोई घंटे भर के बाद वह फिर हमारे पास आया, और बोला—"सरकार, वह मिट्टी तो भर दी गई। पर जो नए गड्ढे की मिट्टी है, उसका क्या किया जाय?"

"अरे भई, यह भी कोई पूछने की बात है? एक और गड्ढा खोद कर उसमें दाब दो,"—शैतान ने कहा।

माली फिर चला गया। कुछ देर बाद हाँफता हुआ आया, और बोला—"हुज़ूर, वह मिट्टी तो दबा दी गई। पर अब नये गड्ढे का मिट्टा कहाँ फेंका जाय?"

"हमें नहीं जानते," शैतान झल्ला कर बोले—"मामूली सी बात है। एक और गड्ढा खोद लो।'

और माली बेचारा सिर खुजलाता हुआ चला गया। इतने में जज साहब आ गये, और वहीं बैठ गये। हम खेलों के सम्बन्ध में बातें करने लगे।

"तुम्हें कौन-से खेल पसन्द हैं?" जज साहब बोले।

' कबड्डी और घोड़ो।"

"कोई ख़ास अच्छे खेल तो हैं नहीं," वह बोले।

"आपको कौन सा खेल पसन्द है?" शैतान ने पूछा।

"उसे खेल तो नहीं कहा जा सकता। मुझे घुड़दौड़ बहुत पसन्द है। जब योरोप में था, तो बड़े शौक से घुड़दौड़ देखा करता था।"

"माफ़ कीजिये, मुझे घुड़दौड़ बिलकुल पसन्द नहीं,"—शैतान बोले।

"यह क्यों?"

"देखिये, यह तो सब जानते हैं कि कुछ लोग कुछ घोड़ों से तेज़ दौड़ते हैं, और यह भी लाज़िमी बात है कि अगर बहुत घोड़े दौड़ेंगे, तो कुछ आगे निकल जायँगे और कुछ पीछे रह जायँगे, और आख़िर में एक घोड़ा सब से आगे निकल जायगा। भला यह जानने की क्या ज़रूरत है कि कौन-सा घोड़ा आगे निकलता है। या तो यह हो कि कोई घोड़ा अपना दोस्त हो, तो आदमी उसे देखने चला भी जाय, नहीं तो सब घोड़े एक-से हैं।"

जज साहब से कोई जवाब न बन पड़ा। कुछ देर खामोश रहे, फिर मुस्करा कर बोले—"लाहौल विलाकूवत!"

× × ×

मुझे और शैतान को एक बहुत बड़ी दावत में बुलाया गया। बड़े-बड़े

लोग आये हुये थे। उन साहब और बगम साहबा न जा सके, इसलिये हमें पूरा आज़ादी मिल गई और शैतान उतर आये उन्हीं साथी हरकतों पर। एक खतरनाक से बुजुर्ग हमें बहुत बुरी तरह से देख रहे थे। कुछ मौलाना-से मालूम होते थे। न जाने क्यों इस तरह आँखें फाड़-फाड़ कर हमें घूर रहे थे। अन्त में जब उनसे न रहा गया, तो शैतान से बोले—"साहबज़ादे, मैं देख रहा हूँ कि तुम पूरे आधे घंटे से उन लड़कियों को घूर रहे हो। यह बहुत बुरी बात है।"

शैतान बोले—"किबला! घूरना दो किस्म का होता है—'घूरना बिलतहक़ीक़' (खोज के लिये) और 'घूरना बिलतफ़रीह' (मनोरंजन के लिये)। यह खाकसार इस वक्त पहली बात कर रहा है, क्योंकि मुझे अभी किसीने बताया है कि उन खातून (महिला) का नाक तिर्छी है और एक आँख बड़ी है और एक छोटी।"

मौलाना कुछ कहने ही वाले थे कि शैतान अदब से बोले—'और आप उन्हें क्यों नहीं मना करते, जो तफ़रीह के लिये घूरते हैं। यहाँ बेशुमार लोग हैं। मिसाल के तौर पर उन साहब को (इशारा करके) ही ले लीजिये, जो 'ज़ेर मूँछ' (मूँछ के नीचे) मुस्करा रहे हैं।'

'ज़ेरे मूँछ मुस्करा रहे हैं? क्या मतलब हुआ?'

लोग 'ज़ेर-लब' (होंठों के नीचे) मुस्कराया करते हैं, लेकिन इनकी मूँछें इतनी घनी और रोबदार हैं कि हम बस मुस्कराहट को महज़ ज़ेरे मूँछ मुस्कराहट ही कह सकते हैं। शायद यह साहब बड़े फ़ख्र (गर्व) से कहते होंगे कि— मूँछों के साए में हम पल कर जवाँ हुए हैं।'

बात शुरू कहाँ से हुई थी और आ पहुँची कहाँ! मौलाना खिसियाने हो कर बोले—'ख़ैर! कुछ भी हो, बहरहाल इन्सान को परहेज़गार होना चाहिये।'

मैं परहेज़गार हूँ," शैतान बोले।

'तुम और परहेज़गार! खूब!'

'जी नहीं, मुझे फ़ख्र है कि खुदा के फ़ज़ल से मैं परहेज़गार हूँ और खुदा ने चाहा, तो हमेशा रहूँगा। परहेज़गार वह आदमी है जो खटाई, चिकनी और गर्म चीज़ों से परहेज़ करे, और यह मैं करता रहूँ।'

इतने में कुछ मेहमान आ गए और उनसे हमारा परिचय कराया गया। वह मौलाना इधर उधर हो गए। जहाँ चारों तरफ़ शोर गुल मचा हुआ था

वहाँ हमने एक साहब को देखा, जो चुपचाप बैठे थे, जैसे तपस्या करने को बैठे हों। शैतान झट वहाँ पहुँचे, और उनसे बोले—"अगर जनाब बुरा न मानें तो एक बात पूछूँ?"

"कहिये।"

"आप चुप क्यों हैं?"

"बस यों ही।"

"तो, साहब, अगर आप अक़्लमन्द हैं तो निहायत बेवक़ूफ़ी कर रहे हैं, और अगर बेवक़ूफ़ हैं, तो निहायत अक़्लमन्दी कर रहे हैं।"

और वह महाशय सोचने बैठ गए कि इसका मतलब क्या हुआ।

इधर उधर ढूँढने पर वह मौलाना हमें फिर मिल गए, और पहले की तरह फिर बड़े ग़ुस्से से हमें घूरने लगे। शैतान चाहते थे कि उनसे बातें हों, किन्तु कोई बहाना नहीं मिलता था। इतने में कुछ छोटे-छोटे क़द की महिलाएँ दाख़िल हुईं। बिलकुल छोटी छोटी थीं।

शैतान जल्दी से बोले—"देखिये जनाब, ये 'पेंगुइन सीरीज़' की औरतें हैं!"

और मौलाना ने बड़े ही ख़तरनाक ढंग से एक 'हूँ' की।

उसी समय एक अत्यन्त दुबले साहब एक अत्यन्त मोटे महाशय के साथ दाख़िल हुए। दोनों में इतना अधिक अन्तर था कि दोनों एक दूसरे को बुरा तरह प्रकट कर रहे थे।

शैतान उन बुज़ुर्ग के पास सरक कर बोले—"वह देखिये, जनाब उनमें एक 'इस्तेमाल से पहले' हैं, और दूसरे 'इस्तेमाल के बाद' हैं।" वह शायद समझ न सके।

शैतान बोले—"आपने ताक़त बढ़ाने वाली दवाइयों के इश्तहार तो देखे होंगे। वहाँ इस्तेमाल से पहले और इस्तेमाल के बाद भी देखा होगा। वहीं आज आप यहाँ देख लीजिये।"

इस बार तो उन्होंने बहुत ही बुरा मुँह बनाया।

एक दरवाज़ा खुला, और एक बहुत छोटे क़द के आदमी और एक बहुत ही लम्बे महाशय दाख़िल हुए। उनके क़द में कोई चार फ़ुट का फ़र्क़ होगा।

मौलाना मुस्करा कर बोले—"इस पर तुमने कुछ नहीं कहा! कह दो इनके बारे में भी।"

लोग आए हुये थे। जज साहब और बेगम साहबा न आ सके, इसलिये हमें पूरी आज़ादी मिल गई और शैतान उतर आये उल्टी-सीधी हरकतों पर। एक खतरनाक-से बुजुर्ग हमें बहुत बुरी तरह से देख रहे थे। कुछ मौलाना से मालूम होते थे। न जाने क्यों इस तरह आँखें फाड़ फाड़ कर हमें घूर रहे थे। अन्त में जब ज़ब्त न रहा गया, तो शैतान से बोले—"साहबज़ादे, मैं देख रहा हूँ कि तुम पूरे आधे घंटे से उन लड़कियों को घूर रहे हो। यह बहुत बुरी बात है।"

शैतान बोले—"किबला! घूरना दो किस्म का होता है—'घूरना बिलतहक़ीक़' (खोज के लिये) और 'घूरना बिलतफ़रीह' (मनोरंजन के लिये)। यह खाकसार इस वक्त पहली बात कर रहा है, क्योंकि मुझे अभी किसीने बताया है कि उन खातून (महिला) की नाक टेढ़ी है और एक आँख बड़ी है और एक छोटी।"

मौलाना कुछ कहने ही वाले थे कि शैतान जल्दी से बोले—"और आप उन्हें क्यों नहीं मना करते, जो तफ़रीह के लिये घूरते हैं। ऐसे यहाँ बेशुमार लोग हैं। मिसाल के तौर पर उन साहब को (इशारा करके) ही ले लीजिये, जो 'ज़ेरे मूँछ' (मूँछ के नीचे) मुस्करा रहे हैं।'

ज़ेरे मूँछ मुस्करा रहे हैं! क्या मतलब हुआ?"

"लोग 'ज़ेरे-लब' (होंठों के नीचे) मुस्कराया करते हैं, लेकिन इनकी मूँछें इतनी घनी और खूँख्वार हैं कि हम बस मुस्कराहट को महज़ ज़ेरे मूँछ मुस्कराहट ही कह सकते हैं। शायद यह साहब बड़े फ़ख्र (गर्व) से कहते होंगे कि—मूँछों के साए में हम पल कर जवाँ हुए हैं।"

बात शुरू कहाँ से हुई थी और जा पहुँची कहाँ! मौलाना खिसियाने हो कर बोले—"ख़ैर! कुछ भी हो, बहरहाल इन्सान को परहेज़गार होना चाहिये।"

"मैं परहेज़गार हूँ," शैतान बोले।

"तुम और परहेज़गार! खूब!"

"जी नहीं मुझे फ़ख्र है कि ख़ुदा के फ़ज़ल से मैं परहेज़गार हूँ और ख़ुदा ने चाहा तो हमेशा रहूँगा। परहेज़गार वह आदमी है, जो खटाई, मिर्चों और गर्म चीज़ों से परहेज़ करे और वह मैं करता रहूँ।"

इतने में कुछ मेहमान आ गए और उनसे हमारा परिचय कराया गया। वह मौलाना इधर उधर हो गए। यहाँ चारों तरफ शोर गुल मचा हुआ था

शैतान बोले—"अजी क्या साफ़ कहूँ ! साफ़ तो है कि गुल्ली डण्डा आ रहा है।"

इतने में खाना शुरू हो गया। हम दोनों जान-बूझ कर उन साहब के पास बैठे। शायद उन्हें मछली बहुत पसन्द था, अतएव उन्होंने कई बार मछली मँगवाई। अब जो वह मछली मँगवाते हैं, तो नौकर कई इधर उधर की चीज़ें तो दे जाता है, किन्तु मछली नहीं लाता। स्पष्ट था कि मछली खत्म हो गई है। किन्तु मौलाना बार बार यही कहे जाते थे कि मछली लाओ। नौकर बेचारा साफ़ जवाब नहीं दे सकता था और हाँ भी कह जाता था। आखिर उनसे न रहा गया। बोले—"यह कमबख्त मछली क्यों नहीं लाता ? और अब तो गायब ही हो गया। न जाने कहाँ मर गया ?'

"मछलियाँ पकड़ने गया है !' शैतान बोले।

और एक बहुत ज़ोर का ठहाका पड़ा।

दावत के बीच में ही बाहर ज़ोर से वर्षा होने लगी थी, अतएव खाने के बाद यह निश्चय हुआ कि वर्षा के रुकने का इन्तज़ार किया जाय और उतनी देर काफ़ी और चुटकुलों के दौर चलें।

सब लोग चुप हो गए। और एक साहब ने (जो तुरन्त ही सभापति बना दिये गए थे) किसी एक का नाम लिया और कहा—"आप अपने जीवन की कोई सच्ची घटना सुनाइये !"

उन्होंने सुना दिया। चौथा नम्बर शैतान का था। चूँकि पहले बहुत ही करुण कहानियाँ सुनाई गई थीं इसलिये सब लोग सहमे बैठे थे। शैतान बोले—"बहिनो और भाइयो ! यह घटना मेरे जीवन में मील के पत्थर का काम देता है। इसने मेरे जीवन पर सब से अधिक प्रभाव डाला है।'

और सब चुप हो कर बड़े ध्यान से सुनने लगे।

यह उन दिनों की बात है जब मैं गद्का खेला करता था। वैसे अब भी मैं अपने कॉलेज का सब से अच्छा गद्काबाज़ हूँ पर उन दिनों बहुत ही अच्छा गद्का खेलता था। एक दिन हम सब कॉलेज के बरामदे में खड़े थे। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। हम इन्तज़ार कर रहे थे कि कब पानी बन्द हो और बाहर निकलें। इतने में हमने देखा कि एक जुगनू उड़ा जा रहा है।"

"दिन [illegible] जुगनू ?"—बड़े मौलाना बोले।

"या हाँ, या जुगनू की क़िस्म का कोई और पक्षी होगा।"

'जुगनू पक्षी है क्या ?" मौलाना बोले।

"अजी क्रिबला, जो चीज़ उड़ती है, वह पक्षी है। हाँ तो, साहब, सब लड़कों का जी ललचाया कि उसे पकड़ें। मगर बारिश की वजह से किसी की हिम्मत न पड़ी। आख़िर मैं बाहर जाने लगा। लड़कों ने मना किया कि भीग जाओगे। मैंने एक न सुनी और बाहर निकल आया। गदके का माहिर (विशेषज्ञ) था। एक बूँद आई, उसे गरदन के एक झटके से बचा गया, दूसरी आई, उसे एक ओर [illegible] के बचाया तीसरी आई, उसे कमर को हिला कर बचाया। गरज़ इसी तरह झुकता झुकता तरह तरह के पैंतरे बदलता हुआ मैं ऐसी मूसलाधार बारिश में उस जुगनू को साफ़ पकड़ लाया। और जब बरामदे में लौट कर आया, तो मेरे कपड़ों पर एक बूँद भी न थी।"

अब जो ठहाके लगे हैं, तो वातावरण की गम्भीरता एकदम ख़तम हो गई। सभापति महोदय उठ कर बोले—"साहब! हम आप से एक गम्भीर घटना का वर्णन सुनना चाहते हैं, और आप को दस मिनट देते हैं। इस दरमियान में दूसरे सज्जन एक चुटकुला सुनाएँगे।"

अब यह वह महाशय थे, जो इतनी देर से गुम सुम बैठे थे। बेचारे घबरा गए। सोचा कि यह क्या आफ़त आई। बहुत चाहा कि पीछा छुड़ा लें, किन्तु वहाँ कौन सुनता था। आख़िर तंग आ कर बोले—'मुझे तो कोई नया चुटकला याद नहीं। हाँ, एक पुराना चुटकला याद है, जो मैंने पहले किताब में पढ़ा था। वह यह है कि एक जगह चार बेवकूफ़ बैठे थे। एक बोला कि अगर दरिया में आग लग जाय, तो मछलियाँ किधर जायें? दूसरा बोला—पेड़ों पर चढ़ जायें!"

"अरे साहब, वह तो तीन थे। यह चौथा बेवकूफ़ आप कहाँ से लाए?" एक ओर से आवाज़ आई।

"चौथे ये खुद थे,"—शैतान बोले। और लोग चीख़ें मार मार कर हँसने लगे।

अब सभापति महोदय ने शैतान से कहा कि वह एक गम्भीर घटना सुनाएँ।

शैतान बोले—"आज से कुछ साल पहले की बात है। इसी कमरे का ज़िक्र है। मैं यहाँ ज़ाकिर साहब (मेज़बान के लड़के) के साथ आया था। यही रात के दस बजे थे। बिलकुल ऐसी ही बारिश हो रही थी। मैं घर न जा सका और मुझे इसी कमरे में सोना पड़ा। (इशारा कर के) मेरा बिस्तर यहाँ बिछा हुआ था। मैं बिस्तर पर लेट गया। मेरा सिगरेट ख़तम हो गया, और मैंने

उसे बेतरबरा की हालत में एक तरफ़ फेंक दिया। फिर अचानक मुझे ख़याल आया कि नीचे क़ालीन बिछा हुआ है। जलता सिगरेट फेंका था। उठ कर जो देखता हूँ तो पलंग के नीचे से सूखा हुआ एक हाथ निकला और सिगरेट को उठाकर पलंग के नीचे गायब हो गया।"

शैतान कुछ रुके। देखा, लोग सहम गए हैं।

'और साहबान! मैं विश्वास के साथ कहता हूँ कि वह हाथ किसी जीवित मनुष्य का नहीं था बिलकुल सूखा हुआ पीला हाथ था। ख़ैर, मैंने क़ुरान की आयतें पढ़ीं। सोचा कि शायद मुझे वहम हुआ होगा, और कुछ गुनगुनाने लगा। सोचा कि अब सो जाना चाहिये इसलिये मैंने यों ही कह दिया—'अरे यह बिजली जल रही है इसे बुझाना तो भूल ही गया'। यह कह कर मैं उठने लगा था कि टिक' की आवाज़ आई, और किसी ने बिजली बुझा दी। अब जो मैं इस कमरे से हड़बड़ा कर भागा हूँ तो पीछे घूम कर नहीं देखा।

"फिर क्या हुआ?" एक ओर से आवाज़ आई।

"फिर हमने इस मकान का कोना कोना तलाश किया पलंग के नीचे भी देखा, पर कुछ न मिला। सो इस कमरे में ज़रूर भूत प्रेत है। और अरे! यह मुर्गी कहाँ से आ गई?' शैतान ने एक अँधेरे कोने की ओर इशारा कर के कहा। सब लोग उठ खड़े हुए।

अरे!' शैतान ने उछलते-कूदते हुए कहा—' गज़ब ख़ुदा का! यह गुटर गुटर कौन रहा है?' और एकदम से उछलने लगे।

'यह मेरे कानों में कौन चाट रहा है?' शैतान चिल्ला कर बोले—''और यह परदे के पीछे से ऊँट क्यों झाँक रहा है?"

और कमरे में हलचल मच गई। शैतान ने मुझे इशारा किया और मैंने चुपके से बिजली बुझा दी। अब जो धमा चौकड़ी मची है, तो न पूछिये। सब के सब कमरे से बाहर निकल आए और बाहर बरामदे में खड़े हो गए।

थोड़ी देर बाद लोग अपने अपने घरों को जा रहे थे। वह मौलाना भी साथ थे, और नीचे सड़क पर झाँक रहे थे। शायद उन्हें किसीका इन्तज़ार था। इतने में एक ताँगा गुज़रा। मौलाना चिल्ला कर बोले—' भई, ठहरना! तुम्हारा ताँगा ख़ाली है क्या?'

उधर ताँगेवाले ने सुना ही नहीं। मुझे बड़ी हँसी आई। लेकिन रूफ़ी बड़ी गम्भीरता से बोले— क़िबला, अगर आप यों फ़रमाते तो बेहतर था कि तुम्हारी ख़ाली ताँगा है क्या?"

मौलाना झेंप गए। उनके मुँह से ग़लती से निकल गया था। वैसे वह भयभीत अवश्य थे।

ताँगे का इन्तज़ार होता रहा। शैतान मौलाना से बोले—"क्यों, साहब, आपकी 'घड़ी' में क्या 'घड़ा' है?"

"बारह बजने वाले हैं," शैतान का व्यंग्य समझ कर भी मौलाना धीरे से बोले।

"मेरे ख़याल में अब चलना चाहिये। सड़क पर ताँगा ज़रूर मिल जायगा।" और हम तीनों नीचे उतरने लगे।

"ख़िचड़ा! इन सीढ़ियों के बारे में भी एक पुर असरार (रहस्यपूर्ण) क़िस्सा मशहूर है, जिसे मैं अँधेरे में सुनाना नहीं चाहता।" और मौलाना और भी धीरे धीरे उतरने लगे।

अजी, आप तो ठिठके कर उतर रहे हैं। ज़रा जल्दी कीजिये!"—शैतान बोले।

"वैसे हाँ ज़रा ये चिकनी सीढ़ियाँ हैं कहीं...!"—वह बोले।

"जी हाँ ठीक है। सीढ़ियाँ उतरते चढ़ते वक़्त ज़रूर ख़याल रखना चाहिये, क्यों कि परसों की बात है कि मैं जल्दी जल्दी आने से उतर रहा था। एकाएक जो एक 'फिसला' से 'सीधा' तो दूर तक लोटता हुआ चला गया।"

मौलाना ने एक बार ग़ुस्से से घूम कर देखा ज़रूर, पर कुछ बोले नहीं।

× × ×

शैतान को रुपयों की सख़्त ज़रूरत हुई। मेरे पास आये। महीने की अन्तिम तारीख़ें थीं। मैं अपना जेब-ख़र्च और स्कालरशिप आदि सब ख़र्च कर चुका था। सोच-विचार के बाद निश्चय हुआ कि दुरुमत बाबा सम्भवतः अमीर रहते हैं उनसे उधार लिया जाय।

शैतान दुरुमत बाबा के पास गये, और बोले—"ज़रा बाग़ में चलिये। आप से कुछ कहना है।" उन्हें ताज्जुब हुआ। बाग़ में पहुँचे। वहाँ शैतान ने सुर्ख़ी बनाई और बोले—"अरे, यह तो वहीं कमरे में कहना था।" अब फिर कमरे में पहुँचे। वहाँ कुछ देर सोचते रहे, फिर बोले—"मैं भी कैसा गधा हूँ! राज़दाराना बात सिर्फ़ छत पर कही जा सकती है!" मैं यह सारा तमाशा देख रहा था। ज़रा-सी बहस के बाद दोनों छत पर पहुँचे। वहाँ जा कर शैतान ने दुरुस्त समझा कि यदि यह बात बाग़ में सुनाई जाय, तो अच्छा रहेगा। और

हुस्मत आपा सबक गईं। ख़ैर, बाग़ में पहुँचे। वह बोलीं—"अब मैं यहाँ से हरगिज़ न हिलूँगी।"

शैतान बोले—"तुम इन दिनों मुझे बहुत अच्छा लग रहा हो।"

और हुस्मत आपा तुरन्त बोलीं—'इसके सबूत मेरे पास नहीं हैं।'

शैतान बोले—'यक़ीन करो कि तुम बहुत अच्छी लग रही हो।"

वह बोलीं—"यक़ीन कीजिये कि मैं तुम्हारा कुछ भी कह नहीं दे सकती।'

शैतान ने भारा से कहा—"कर्नल और समस्या माँगता है? मैं तो सिर्फ़ यह कहना चाहता था कि तुम बहुत अच्छी लग रही हो—परसों से।'

इसी तरह देर तक उलटा-सीधा हाँकने के बाद हुस्मत आपा को विश्वास दिलाया कि वास्तव में सच कहा जा रहा है। वह शर्मा गईं, और धीरे से बोलीं—'क्या अच्छा लग रहा है आख़िर?"

'ख़ुदा जाने क्या अच्छा लग रहा है। लेकिन परसों से मेरी हालत ख़राब है परसों से"

"परसों क्या बात थी ऐसी?"—उन्होंने और भी शर्मा कर कहा।

परसों जब तुम अपने कमरे में बैठी बिसूर रही थीं, तो बस उस वक़्त तुम मुझे बहुत ही अच्छी लगीं। मैं इसी इन्तज़ार में रहा कि तुम रोती कब हो। लेकिन जब आँसू एक बूँद भी न निकला तो मेरी आरज़ुओं का ख़ून हो गया। काश कि तुम ज़ोर-ज़ोर से रोतीं! ख़ैर! इस बार जब कभी रोने का सामान हो, तो मुझे ज़रूर बुला लेना।"

× × ×

अब तक हमें पता ही न चल सका कि रज़िया किसके बारे में हर वक़्त सोचती रहती है। वैसे हमें यह विश्वास अवश्य था कि उसे किसी न किसी का ख़याल ज़रूर रहता है। चौबीस घंटे शैतान का और मेरा वहम रहता। वह मुझसे अनाब शनाब अजीब हरकतें करवाते। एक दिन बोले—'रज़िया को मूँछें पसन्द हैं, तुम रख लो।" मैंने रख लीं। फिर बोले—उसे बराबर मूँछें पसन्द नहीं। एक तरफ़ का बड़ा हो, दूसरी तरफ़ का छोटा।" मैंने कुछ दिन अपनी हँसी उड़वाई। फिर बोले—'उसे मूँछें पसन्द ही नहीं।" बस साफ़ करा दी गईं।

एक दिन मुझे रज़िया को उसकी सहेली के यहाँ छोड़ने जाना था। शैतान बोले—'ख़ूब अच्छे से कपड़े पहिन कर जाना। रज़िया के साथ चलोगे, शान रहेगी।"

मैंने पूछा—"रज़िया को किस तरह का लिबास पसन्द है ?"

शैतान बोले—"तुम इसी वक्त आ कर लाल रंग का पतलून पहिन लो। हरे रंग का कोट, पीले रंग की टाई, ब्राउन जूते, नीली कमीज़ और फ़ाख्ताई रंग का रूमाल। जाओ, अभी पहिन कर आ जाओ।"

और जब मैं और रज़िया साथ साथ चल रहे थे, तो जो भी हमें मिलता वह न केवल आँखें फाड़ फाड़ कर मुझे देखता, बल्कि देर तक घूम घूम कर देखता जाता !

आख़िर, रज़िया बोली—"यह आपको सूझी क्या थी ?"

"क्या ?"

"यह लिबास कैसा पहिन आए हैं आप ? बिल्कुल 'टैकनीकलर' बने हुए हैं।"

एक दिन अचानक शैतान ने एक लाजवाब योजना सोची कि एक नाटक खेला जाय, जो मेरे नाम से मशहूर किया जाय और इन्तज़ाम सारा शैतान करेंगे। योजना सुन्दर था। रज़िया पर इसके द्वारा थोड़ा सा रंग जमाया जा सकता था।

पूरे एक महीने की तैयारियों के बाद हमने एक रोमैन्टिक नाटक तैयार कर लिया। जब नाटक के नाम का सवाल आया, तो शैतान बोले—"इसका नाम 'बेगुनाह ऊँट' ठीक रहेगा।"

"लेकिन इसका प्लाट तो रोमैन्टिक है, और इसमें ऊँट कहीं भी नहीं आता।"

"आप दल लोग ऐसी अनूठी सूझ पर तो मात हो रहे हैं। सब से अच्छा नाम तो यही है। और भी नाम हैं जैसे 'मुकम्मिल फ़ाहिश' या 'महामूर्ख' या "

और मैं तुरन्त मान गया।

"अच्छा अब इसका 'उर्फ़' ज़रूर होना चाहिये। उर्फ़ के बग़ैर तो कुछ हो ही नहीं सकता। अभी अभी मैंने एक बहुत ही अच्छी रोमैन्टिक कहानियों की किताब पढ़ी है, जिसका नाम था 'समन्दर और सितारे' उर्फ़ 'बिजलियाँ और कड़कड़ाहट'। इस उर्फ़ ने मुझ पर इतना असर किया [redacted] मेरे आँसू निकल आये।"

"तो फिर इस को उर्फ़ या। क्या रक्खोगे ?"

"मेरे ख़याल में तो ऐसे ठीक रहेगा—'बेगुनाह ऊँट' उर्फ़ 'या दिल—मुझे

मार ' "लेकिन इसमें बैले भी कहीं नहीं आता!" मैंने बीच ही में टोका।

"फिर वही बेवकूफ़ों वाली बातें कीं तुमने,"—शैतान ने कहा। और मैं मान गया।

मुझे शाहज़ादा बनाया गया। शैतान ने अपना असली पार्ट इख़्तियार कर लिया, यानी वह शैतान का पार्ट करते थे। एक साहब 'परियों की शाहज़ादी' बनाये गये, और उनकी हजामत इस बुरी तरह बनाई गई कि चेहरा लुच्च किया गया। शहर के सभी सम्मानित व्यक्ति आमंत्रित किये गये। सब से बड़ी बात यह थी कि सर कमर भी पधारे थे, जिन पर हमें गर्व था। क्लब में ड्रामा किया गया। एक बहुत बड़ी भीड़ के सामने परदा उठा।

मैं एक अँधेरे बाग़ में कूदा, और वहाँ परियों की शाहज़ादी पर आशिक़ हुआ। इतने में चन्द्रोदय होना था और मुझे एक दर्द भरा संवाद बोलना था। अब मैं आशिक़ हो कर चाँद का इन्तज़ार कर रहा हूँ। उधर चाँद है कि निकलता ही नहीं। अन्त में तंग आ कर मैंने बिना चन्द्रोदय के ही संवाद बोलना शुरू कर दिया। इतने में एकाएक चन्द्र उदय हुआ, और बड़ी तेज़ी से आसमान (मंच) को पार करता हुआ दूसरी ओर चला गया। एक ठहाका पड़ा। किन्तु मैंने अपना संवाद जारी रक्खा। अब चुपके से चाँद फिर निकल आया और मैंने एक घुटने के बल झुक कर दाहिना हाथ बढ़ा कर कुछ कहना शुरू किया ही था कि देखता क्या हूँ कि चाँद दूसरी ओर पहुँच चुका है। अब जो उस ओर मुँह करता हूँ, तो चाँद इधर आ गया। सारांश यह कि मेरी और चाँद की एक आँखमिचौली हुई, और ख़ूब ठहाके लगे।

इसी तरह एक अत्यन्त सुन्दर दृश्य पर एकदम सारे बिजली के लट्टू बुझ गए और जब दोबारा जले तो सारा मज़ा किरकिरा हो चुका था। अब जो परदे का सुर्मीयत शुरू हुई है तो मैं झुँझला उठा। ज़रा अच्छा सा दृश्य आया और एकदम से परदा गिर गया, और लोगों ने तालियाँ बजानी शुरू कर दीं। ख़ैर, बड़ी कठिनाइयों के बाद ड्राप-सीन हुआ। शैतान साहब स्टेज पर आए और कहने लगे—"महिलाओ और सज्जनो! मैं नाटक के लेखक (मेरा नाम ले कर) के आग्रह करने पर उनकी ओर से सर कमर से प्रार्थना करता हूँ कि वह स्टेज पर तशरीफ़ ला कर दर्शकों को एक ठुमरी या दादरा सुनाएँ। हमारा तबलची बहुत ही होशियार है। सर कमर चाहे जैसी रागिनी छेड़ दें, वह साथ चल निकलेगा।"

उपस्थित जन एकदम चुप रह गए, और सर कमर अपने कुटुम्ब के सहित

उठ कर चले गए। इतना अवकाश ही न था कि मैं शैतान से कुछ कहता।

परदा उठा। थोड़ी ही देर में शैतान का पार्ट शुरू होना था। अब जो शैतान को ढूँढ़ते हैं, तो वह ग़ायब। बड़ी परेशानी हुई, निश्चय हुआ कि जल्दी से एक और शैतान बनाया जाय।

दृश्य था कि परियों की शाहज़ादी बाग़ में टहल रही है और उसे एक ठहाका सुनाई पड़ता है। वह चौंक कर कहती है—"मैं समझती हूँ कि तू शैतान है, और मुझे डराना चाहता है, लेकिन मैं तुझ पर धिक्कार भेजती हूँ। ओ नालायक़ शैतान! मूर्ख कहीं के, बेवक़ूफ़!" यह कह कर वह एक गाना गाती है।

ठहाका नक़ली शैतान से लगवाया गया। नायिका ने अपना संवाद बोल दिया। एकाएक एक धमाका हुआ। स्टेज की छत से एक लपट सी निकली, और कोई विचित्र चीज़ कूदी जिसका रंग हरा था। आँखों की जगह दो चिनगारियाँ दहक रही थीं, दो चमकीले सींग थे, नुकीले कान ऊपर को उठे हुए थे। बड़ी भयानक आकृति थी। नायिका ने एक हृदय विदारक चीख़ मारी और खड़ी की खड़ी रह गई। हम सब हैरान रह गए। अब जो ग़ौर से देखते हैं तो ये असली शैतान (रूज़ी) थे, जो अपना मेक अप स्वयं कर आए थे।

नायिका इतनी डरी हुई थी कि उसने एक विचित्र बेढंगे स्वर में गाना शुरू किया—"रस से भरे तारे नयन।" उसका राग बिलकुल अँगरेज़ी मालूम पड़ता था। शैतान ने अत्यन्त भयानक स्वर में हँसना शुरू कर दिया, और थियेटर हाल के सारे बच्चे चिल्ला चिल्ला कर रोने लगे। जो जो बच्चा रोता था, उसे घर भेज दिया जाता था।

अब जो शैतान ने डरावना अभिनय शुरू किया है, तो दर्शकों पर सन्नाटा छा गया। एक एक करके सभी स्त्रियाँ चली गईं।

सारांश यह कि शैतान ने जी खोल कर धमा चौकड़ा मचाई। अन्त में तो यहाँ तक नौबत पहुँच गई कि शैतान ने अपने मन से संवाद बोलना तथा प्रत्येक दृश्य में मंच पर आना शुरू कर दिया चाहे उसका पार्ट हो या न हो। एक दृश्य आया, जहाँ शैतान को मेरे एक मंत्र पढ़ने पर मर जाना चाहिये था। मैंने कई बार मंत्र पढ़े किन्तु शैतान टस से मस न हुए। मैंने चुपके से कहा—"अब मर भी जाओ।" प्राम्पटर ने कहा—"मर भी जाइये, रूज़ी साहब!" मंच के पीछे से आवाज़ आई—"मर भी जाइये, जनाब!" लेकिन

वह फिर भी न मरे। अन्त में मैंने गुस्से से कहा—"अब मरते हो या नहीं?"

शैतान ज़ोर से बोले—"नहीं मरते!" और दफ़्अतन हँसने लगे।

"अच्छा, तो यह बात है! उठूँ फिर?" मैं सचमुच उठने ही लगा था फिर ख़याल आया कि यह शाहज़ादों की शान के ख़िलाफ़ है कि मामूली से शैतान पर हाथ उठाएँ। अतएव मैंने ताली बजाई। कुछ सिपाही आ गए। मैंने कहा—"ले जाओ, इस शैतान को पकड़ कर मार डालो।"

"जहन्नुम में भेज दो!" दर्शकों में से किसी ने नारा लगाया।

"हाँ क़त्ल करके जहन्नुम में भेज दो!"

"नहीं जाते हम,"—शैतान ने अपने लम्बे-लम्बे नुकीले नाख़ून दिखाते हुए कहा।

"अच्छा तो फिर लाहौलविलाक़ूवत!" मैंने ज़ोर से कहा।

और शैतान एकदम तड़प और छलाँग मार कर जाने कहाँ ग़ायब हो गए।

× × ×

मुझे अब जो विश्वस्त सूत्र से सूचनाएँ मिलीं, तो मैं ख़ुशी से बेक़ाबू हो गया। मुझे बताया गया कि रज़िया को सिर्फ़ मेरा ख़याल है। ख़याल क्या सन्त है! वह खिंची खिंची अवश्य रहती है लेकिन इसका कारण हुकूमत आपा हैं।

मैं सीधा शैतान के पास गया, और कहा कि भाई अब तो पूरा विश्वास कर लेना चाहिये। मेरी हालत उन दिनों पागलों की सी थी। जो कुछ शैतान कहते थे मैं तुरन्त कर बैठता था। पहले तो उन्होंने अपनी आदत के अनुसार मुझे रज़िया से बेज़ार करने की कोशिश की, उसके ख़याल से बाज़ आ जाने के लिये कहा। जब मैं न माना तो उन्होंने कहा कि दुनिया बहुत बड़ी है और रज़िया की निगाह भी कमज़ोर है। मैं फिर भी न माना तो उन्होंने एक ऊटपटाँग सी योजना बताई कि मैं रज़िया से बाग़ में मिलूँ, लौटते समय अनारों के झुरमुट की ओर से आऊँ, और वहाँ जो गड्ढा है, उसमें गिर पड़ूँ और बेहोश हो जाऊँ। रज़िया ज़रूर सिर दबाएगी। बस मैं बेहोशी ही में बड़बड़ाने लगूँ, और रज़िया से मतलब बात साफ़ साफ़ कह दूँ। बस उस समय जो जवाब मिलेगा वह अन्तिम होगा।

मैं हिचकिचाया। शैतान बोले—"यह आख़िरी इम्तहान है। इस बार ज़रूर आख़िरी जवाब मिलेगा। हिम्मत कर ही डालो।"

मैं तैयार हो गया। मैंने नन्ही को जासूस बनाया कि जैसे ही रज़िया बाग़ की ओर जाय, मुझे तुरन्त इशारा कर दे। इशारा पाते ही मैं भागा, और रज़िया को बाग़ में जा लिया। पहले तो अपने ड्रामे के बारे में पूछा। बोली—'कुछ ऐसा बुरा भी नहीं था।" फिर इधर उधर की बातें होने लगीं। अब लौटने लगे, तो मैं उसे अनारों के झुण्ड की ओर ले गया। अब वह छोटा सा गड्ढा आया जहाँ मुझे गिरना था। पगडण्डी से गड्ढा दूर था, इसलिये मैं घास पर चलने लगा, और एकाएक अनायास ठोकर खाकर मैं गड्ढे में कुछ इस तरह गिरा कि सचमुच चोट लगी। गिरने का रिहर्सल भी तो नहीं किया था।

रज़िया घबरा गई। उसने मुझे होश में लाने के उपाय किये, लेकिन मैं भला कहाँ होश में आता। मैंने हिदायत नम्बर तीन के अनुसार धीरे से कहा—"रज़िया! और आँखें झपका कर देखा भी।

मैंने फिर धीरे से कहा—"मेरी रज़िया!" और वह मेरे पास बैठ गई।

अब मेरा सिर दबाया जा रहा था। कहने को तो मैं 'मेरी रज़िया!' कह गया था, लेकिन मारे डर के मेरा बुरा हाल था। मैंने पूरे एक मिनट के बाद फिर कहा—"मेरी रज़िया!"

और रज़िया चुपके से बोली—"हाँ।"

और मैं मानो आसमान में उड़ने लगा। अब उसने मेरा सिर अपनी हथेली पर रख लिया, और मेरे बालों में उँगलियाँ चलाने लगी। निश्चयात्मक जवाब मिल चुका था, मेरा जी चाहता था कि नाचने लगूँ। रज़िया की उँगलियाँ बालों से खेलती-खेलती गरदन तक पहुँचीं, और मुझे एकदम जोरों से गुदगुदी लगी तो सारे यत्न कर डाले, ओंठ चबाये, अपनी घुड़कियाँ लीं, बहुतेरा रोका, किन्तु वह कमबख़्त गुदगुदी काबू में न आई, और मैं खिलखिला कर हँस पड़ा। अब तो रज़िया नाराज़ हुई है, बस न पूछिये।

× × ×

दूसरे दिन शाम को अत्यन्त उदासी के साथ मैंने शैतान को सारा क़िस्सा सुनाया। वह बोला—"भैया, पहले ही से मुझे शक था, लेकिन अब मुझे यक़ीन हो गया है कि रज़िया तुम्हें पसन्द नहीं करती। इसमें रंज की कोई बात नहीं है। किसी का क्या ज़ोर? और जब मोहब्बत का जवाब मोहब्बत में न मिले, तो वहाँ से चला आना चाहिये। ऐसे मौक़ों पर आबोहवा का बदलना बहुत अच्छा होता है। अब यहाँ रह कर सिवाय रुसवाई के तुम्हें कुछ न मिलेगा। इसलिये अच्छा यही है कि, भैया, तुम यहाँ से चले जाओ, और

समझ लो कि रज़िया को कभी देखा ही न था।"

मैं और भी उदास हो गया। मैंने मरे हुये स्वर में कहा—"अब मैं जहाँ भी जाऊँगा बहुत ही उदास रहा करूँगा क्योंकि रज़िया मुझे इतनी अच्छी लगती है जिसकी कोई हद नहीं। अब मैं उसे हरगिज़ नहीं भुला सकता।"

इसी तरह की बातें करते रहे। आख़िर शैतान ने मनवा कर छोड़ा कि इस समय मेरे लिये अच्छा यही है कि मैं चुपके से चला जाऊँ बिना जज साहब से बतलाये।

"और कालेज के सर्टिफ़िकेट?" मैंने पूछा।

"वह सब मैं भेज दूँगा,"—शैतान बोले। और थोड़ी देर बाद मैं सामान बाँध रहा था। शैतान मेरी मदद कर रहे थे।

इतने में हुकूमत आपा आ गईं। पीछे पीछे मन्ही भी, जिसे वह सदैव अपने साथ रखती थीं। मैंने जल्दी से सन्दूक बन्द कर दिया। मुझे हुकूमत आपा बहुत बुरी लगीं।

मेरी और शैतान की यही इच्छा थी कि वह किसी तरह यहाँ से चली जायँ।

शैतान बोले—"मन्ही, देख तो सही आप के कमरे में जो क्लाक है, वह चल रही है, या खड़ी है?"

मन्ही दौड़ कर बोली—"क्लाक चल तो नहीं रही है, खड़ी है, बस अपनी दुम हिला रही है।"

शैतान मन्ही से बोले—"तो गोया चल रहा है न?"

"चल कहाँ रहा है? चल किस तरह सकती है बेचारी? कीलों से तो गाड़ रक्खा है। बस अपनी दुम हिला रही है।"—मन्ही बोली।

हुकूमत आपा हँस दीं।

शैतान चिढ़ कर बोले—"यह बड़ी हो कर पूरी हुकूमत बनेगी। शाबाश है, हुकूमत! क्या लाजवाब ट्रेनिंग दी है तुमने इस बच्ची को! सत्यानाश कर दिया!" हुकूमत आपा अभी कुछ कहने ही वाली थीं कि शैतान बोले—तुम्हें चाहिये कि इस सारे सबक़ पढ़ा कर एक सर्टीफ़िकेट दे दो, इस तरह कि मैंने पूरे चार साल तक इस बच्ची को अपनी ट्रेनिंग में रक्खा और इसे अच्छी तरह बिगाड़ने की कोशिश की और अब मैं बड़े फ़ख़्र (गर्व) से कह सकती हूँ कि यह एक छिछोरी, चटोरी और ज़िद्दी लड़की बन गई है। लोगों की ऊटपटाँग आलोचना करने में तो इसने मुझे मात कर दिया है। हर एक से लड़ना-झगड़ना, बुज़ुर्गों का हुक्म न मानना, अपना वक़्त ख़राब करना—इन सब

बातों में वह ऐसी होशियार हो गई है कि क्या कहूँ ! जहाँ भी यह जायेगी मेरा नाम रोशन करेगी, मेरी हिमाकतें इसके साथ हैं।"

और हुकूमत आपा ने एक तेज़-सा जवाब दिया, और बाहर जाने के लिये उठ खड़ी हुईं। नन्ही बोली—"भैया, अब तो आप हुकूमत आपा को धमका सकते हैं। ज़रा इनकी शादी हो जाने दो, फिर देखेंगे इन्हें कौन धमकाता है ?"

"अच्छा तो हुकूमत की शादी भी होगी ! कौन कहता है ?"—शैतान बोले।

अब हुकूमत आपा उबल पड़ीं। बोलीं—"और तुम्हारी नहीं होगी ! देख लेना जो कोई लड़की तुम्हारे नज़दीक खड़ी हो जाय। ख़्वाहमख़्वाह रज़िया को भी परेशान कर रक्खा है और (मेरी ओर संकेत करके) इस बेचारे को भी !"

इस पर मेरे कान खड़े हुए।

और शैतान और हुकूमत आपा की खूब लड़ाई हुई। हुकूमत आपा ने सब कुछ बता दिया।

मुझे तन-बदन की सुध न थी।

मैंने शैतान को कालर से पकड़ लिया, और पूछा—"क्या सचमुच तुम रज़िया को मेरे ख़िलाफ़ बहकाते रहे हो ?"

"हाँ !"

मैंने शैतान को अपनी ओर खींचा और मुक्का ताना ही था कि इतने में जज साहब आ गये। वह सदैव की भाँति मुस्करा रहे थे। बोले—"मैंने सब-कुछ सुन लिया है। बैठ जाओ ! जब मैं योरप में था, तो वहाँ एक लड़के से मेरी झपट हो गई। हमारे प्रोफ़ेसर ने हमें झगड़ते देख लिया। वह बोले कि तुम दोनों के दिलों में एक गुबार है, जिसे निकाल देना अच्छा है। तुम किसी न किसी दिन जरूर लड़ोगे। इसके बाद वह हमें खेल के मैदान में ले गये और वहाँ हमारी मुक्का बाज़ी करवाई। हम खूब लड़े। यहाँ तक कि दोनों थक कर गिर पड़े। और हम जब वापस आये, तो बड़े अच्छे दोस्त बन गये थे। अब तुम दोनों आपस में ज़रूर लड़ोगे, इसलिये अच्छा यही है कि हम लोग बाग़ में चलें। तुम्हारा फ़ैसला वहीं हो जायगा।"

उन्होंने ग्लाव्ज़ (Gloves) मँगा लिये, और हम सब कमरे से बाहर निकल आये।

प्लाट में बिजली के लट्टू जल रहे थे। निश्चय हुआ कि वहीं लड़ाई हो। हमें 'ग्लाव्ज़' पहिनाये गये। जज साहब ने घड़ी हाथ में ले ली। हमारे चारों

और सारा कुटुम्ब खड़ा था। जज साहब बोले—"कितने राउंड ?"

मैंने कहा—"जितने आप चाहें ?"

शैतान बोले—"सात !"

जज साहब ने कहा—"तीन में तो फ़ैसला नहीं होगा। पाँच सही।"

पहला राउंड शुरू हुआ। न जाने मेरे हाथ पाँव क्यों शिथिल हो रहे थे। मैं बिना किसी बचाव के शैतान से पिट रहा था। सब बच्चे मेरी ओर थे और मेरी हिम्मत बढ़ा रहे थे। रज़िया एक ओर अकेली खड़ी थी, बिलकुल चुपचाप।

पहला राउंड शैतान का रहा। दूसरे में उन्होंने फिर पीटना शुरू किया, और मैं बुत बना खड़ा रहा। यहाँ तक कि मेरा एक मुक्का भी उनको न लगा। बच्चे चिल्ला चिल्ला कर मेरा उत्साह बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे थे, और मैं न जाने क्या सोच रहा था। शायद इस लड़ाई के बाद तुरन्त यहाँ से चला जाऊँगा। एक ट्रेन रात को ग्यारह बजे जाती है।

तीसरे राउंड में भी यही हुआ। शैतान उछल उछल कर हमला करते थे, और मैं बचाव तक न कर पाता था। बच्चे बुरी तरह शोर मचा रहे थे।

तीसरा राउंड ख़तम हुआ। मैं बैठा ही था कि रज़िया ने मेरे कान में कुछ कह दिया। मैंने काँपती हुई आवाज़ में पूछा—"सच !"

वह बोली—"हाँ !"

और मेरी आँखों के सामने तितलियाँ नाचने लगीं। मैं उछल कर खड़ा हो गया।

चौथा राउंड शुरू हुआ। धड़ाम—धड़ाम—धड़ाम—की आवाज़ें आईं। मेरे ग्लव्ज़ ने हरकत की और मेरे सामने शैतान बेहोश पड़े थे।

वह नाक आउट हो गए थे। जज साहब ने मेरा हाथ हवा में ऊँचा कर के हिला दिया।

और रज़िया मेरे ग्लव्ज़ उतारने लगी।

दुल्हन आपा बोलीं—"मुझे पहले ही पता था !"

"पहले ही पता था आपको ! सच न ?"

और रज़िया बड़ा प्यारा मुँह बना कर बोली—"मुझे भी पहले ही से पता था !"

—कैप्टेन शफ़ीकुर्रहमान

हुए। तो उन्हें बड़े हो कर भी ठीक तरह बात बनाने की आदत नहीं हुई थी। बाद तो अम्मी को सलाम किया और पूछा—"चची जान, यह कौन ख़ानम हैं?" जैसे उसे पहिचान भी नहीं सकते थे। जब अम्मी ने कहा—"बतूल है!" और अम्मी भी बड़ी सीधी हैं, जैसे उनके सवाल का जवाब देना ज़रूरी था, तो सुन कर मुसकराने लगे और कहा—"बतूल? अच्छा! मैं समझा था लंका की राजकुमारी हैं।" बस इसके बाद देख देख कर मुसकराते ही रहे, जैसे किसी बात का आनन्द ले रहे हों।

बतूल को याद आया कि बचपन में मामा इन्हें 'लंका की राजकुमारी' की कहानी सुनाया करते थे और यह कहा करते थे—"मैं भी लंका की राजकुमारी को ब्याह कर लाऊँगा।" जैसे ही यह बात याद आई, शर्म से उसका मुँह लाल हो गया। आँख उठा कर भी न देख सकी। यह ख़याल न आया कि शायद बचपन की बात इन्हें याद भी न रही हो, या शायद संयोग ही से उनके मुँह से यह शब्द निकल पड़े हों। मगर शायद यह अभी उसकी ओर ताक ही रहे थे। कहने लगे—"अनार के फूल बहुत ख़ूबसूरत होते हैं, मुझे लाल फूल पसन्द हैं, आप को पसन्द नहीं क्या, चची जान?" अम्मी बेचारी इन बातों को क्या समझें? उन्हें क्या पता था कि आपने हर एक के लिये एक-एक फूल चुन कर कहा था कि बस अभी फ़ैसला कर लो। बाद में न कहना कि मुझे अपना फूल पसन्द नहीं। और उसके लिये आप ने स्वयं अनार का फूल चुना था।

अब बतूल सोच रही थी "ये घर ही पर होंगे। अब इनके पास बैठना ही होगा। पास तो नहीं, क्योंकि इन्हें तो किसी के पास बैठना पसन्द ही नहीं था। बस या दरीचे थे। इधर आये उधर गये। लोगों की तरफ़ देखा, कई सलाम किया, किसी की हँसी उड़ाई, किसी को देखा बहुत शर्मिन्दा किया, किसी की तरफ़ देख कर मुसकराते ही रहे। उनकी और कोई दवा ही क्या और उनसे कोई काम ही क्या करे? उनकी बेतकल्लुफ़ी का कोई ठिकाना नहीं रहता। अपनी नज़रों की भाषा में, इन दिनों में क्या एक घड़ी भर भी रुकना नहीं सीख सकता था कि काम और कोई बात ही करते, कुछ पूछते ही? आख़िर लोग आपस में हर प्रकार की बातें किया करते हैं। पर यह कैसे हैं जो ऐसी बेतकल्लुफ़ी से, देखते ही इतना बढ़ जाते हैं जैसे जान-पहिचान [illegible] नहीं, जैसे संसार में किसी और का अभिलाष ही नहीं। ऐसे [illegible] से [illegible] आ सकती है? बतूल ने यह सोचते-सोचते निश्चय किया कि उसे पसन्द या मानने में कुछ भी ख़ुशी नहीं है—ज़रा भी आनन्द नहीं है और यह आशा कि [illegible] दुराशा-मात्र है।

है। बस आते और दो एक मिनट देख कर शामिल हो जाते और उस समय उनके चहरे से प्रसन्नता यों फूट फूट कर निकलती कि कोई उन्हें खेलाने से इनकार न करता। और इससे बनूल बहुत कुढ़ा करती कि यह क्या बतमीज़ी है। और कोई कहे तो— मेरा जी नहीं चाहता," और आप जब चाहें, तो लाट साहब की तरह आकर शरीक हो जायें।

उसे याद था कि वह ख़ामोशी के साथ हर चीज़ को अपनी बड़ी बड़ी आँखों से देखते थे और फिर कभी कभी अपने होंठों को बाईं ओर झुका कर इस तरह मुसकराते कि बनूल बहुत चिढ़ता। कहते कुछ नहीं थे मगर इस प्रकार मुसकराते कि दूसरा व्यक्ति लजा जाता और उसे ऐसा अनुभव होता, मानो उसे किसीने कोई जुर्म करते हुये पकड़ लिया हो। उसकी यह आदत उसे बिलकुल न भाती और फिर एक और बात जो याद आना, तो अब उसकी याद से उसे बड़ा शर्म आती। एक दफ़ा रात को घर वाले किसी दूसरे घर में गए हुए थे। सब ने कहा— 'आओ, आँख मिचौनी खेलें।" सब किसी न किसी जगह छिप गए। वह भी एक ओर भागा। उसे सन्देह तो था कि सुलतान भाई कहीं उसी तरफ़ गए थे, मगर उसने परवाह न की। उसे छिपे हुए आधा मिनट भी नहीं हुआ था कि किसीने उसकी कमर में हाथ डाल कर अपनी ओर खींचा। उसने कहा—' सुलतान भाई !" बस आवाज़ पहिचानते ही उन्होंने हाथ निकाल लिया। जैसे उसे छूना भी पसन्द नहीं करते!

और अब कितने ही वर्षों बाद गरमियों की छुट्टी में वह अपनी माँ और छोटे भाई बहिनों सहित अपने घर आ रही थी, और सारे रास्ते ये बचपन की न मिटने वाली स्मृतियाँ उसके मस्तिष्क में चल चित्रों के रूप में चक्कर लगाती रहीं। आपा अनवरी के विवाह में वह ताया के यहाँ आई थी और दस बारह दिन रही था, पर उन दिनों घर में इतने मेहमान थे कि वह बचपन के साथियों से पूरी तरह न मिल सका था। छोटे सिकन्दर और अलमास के अलावा सभी इधर उधर काम में व्यस्त थे। सुलतान भाई से तो किसी को क्या आशा होती कि वह अन्दर आ कर एक मिनट भी बैठते, और फिर अब वह माशाअल्ला जवान हो गए थे। चौड़ा छाती ऊँचा माथा और वही मुस्कान मन्द सी, हृदय को जकड़ लेने वाली रहस्यमयी मुस्कान। हाँ, अब मुस्कान के साथ आँखें भी कोनों की ओर ज़रा सिकुड़ जातीं और उनमें एक चमक पैदा हो जाती, जिससे देखने वाला और भी लजा जाता। पहिले ही दिन कुछ देर के लिये अन्दर आ कर बैठे। सितम्बर के दिन थे बादामी 'पॉपलीन' की खुले गले और आधा बाहों वाली कमीज़ पहिने हुए थे और ढीली मोहरी का पाजामा और बाल बिखरे

में भी प्रशंसा कम ही होती। घर में कोई भी सुलतान की इच्छा के सम्बन्ध में निश्चित राय प्रकट नहीं कर सकता था, क्योंकि प्राय उसकी रुचि आशा के विरुद्ध ही होती। जैसे उसे लोगों को हैरान करने में आनन्द आता हो। केवल निकहत की तीक्ष्ण दृष्टि ही कभी-कभी सुलतान के मतलब को भाँप लेती। अम्मी कभी ग़ौर ही न करतीं और यही कारण था कि उन्हें सुलतान का स्वभाव कभी टेढ़ा या पेचीदा नहीं मालूम होता था।

घर में अलबत्ता सब को विश्वास था कि सुल्तान को लड़कियाँ पसन्द नहीं और वह उन्हें अयोग्य, बेवकूफ़ और आत्माभिमानी समझता है। सुलतान की बड़ी बहिन अनवरी का विवाह हो चुका था, और उन्हें दो-तीन वर्ष से सुलतान के विचारों के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं थी। बड़ा भाई कोई था नहीं। आज़म और सिकन्दर उससे कई वर्ष छोटे थे। केवल निकहत हा उसकी उम्र की थी। पर निकहत को अपनी सहेलियों ही से कम फ़ुरसत मिलती थी। फिर भी घर में किसी पर यदि सुलतान का रोब नहीं था तो वह निकहत ही थी। वैसे निकहत थी ही तेज़ और चतुर कि उस पर दुनिया का कोई व्यक्ति रोब नहीं जमा सकता था। उसने शिक्षा तो दसवें क्लास ही तक पास की थी, मगर अपने अध्ययन के बल पर वह हर विषय पर अपनी राय प्रकट किया करती थी और सुलतान की ख़ामोशी और उसके गहरे विचार कभी उसे देर तक चुप नहीं रहने देते थे।

और अब चूँकि अम्मी सुलतान से स्टेशन पर आने के लिये कह रही थीं, निकहत ने कहा—"अम्मी! आज़म अब बड़ा हो गया है, आप उसीको क्यों नहीं भेज देतीं? वह कह देगा, सुलतान भाई किसी काम को गये हुये थे, इसी-लिये नहीं आये, वरना वह तो बहुत आने को कहते थे। रोज़ याद करते थे कि हुमरात को आयेंगी यह भी कहते, अब तीन ही दिन रह गये हैं, आज तो "

निकहत के व्यंगमय लहजे की उपेक्षा करते हुये सुलतान ने कहा—"तो आज़म चला जायगा, मुझे सचमुच काम है। अलबत्ता यह कथाकारा, निकहत आरा बेगम उर्फ़ सोरान, उनसे दराज़ ही तक रहने दो।" यह कह कर आप बाहर चले गये, मगर निकहत को विश्वास हो गया कि सुलतान भाई स्टेशन ज़रूर जायेंगे।

उधर जैसे जैसे स्टेशन क़रीब आता गया, बतूल को विश्वास होता गया कि और कोई उन लोगों को लेने आ जाय तो आ जाय, पर सुलतान भाई हरगिज़ न आयेंगे। और उसे महसूस हुआ कि बहुत-से आदमी अगर लेने आ जायें, तो बड़ी उलझन होती है। आदमी सामान उतरवाए या लेने आने

बाज़ों की तरफ़ मुड़े। फिर सदाशान भी साथ थे, छोटे मियाँ भी साथ थे। पन्द्रह वर्ष का बड़ा कारी होती है। छोटे मियाँ बरसों में तो गिने नहीं जा सकते थे। घर का रास्ता यह अच्छी तरह जानता थे, घर अपना था, फिर किसीके आने की ज़रूरत ही क्या थी! अस्तु जब अम्माँ ने कहा—"तुम्हारा दादू ने किसी न किसी को ज़रूर स्टेशन पर भेजा होगा, शायद सुलतान भाई को भेजा हो।" तो बबूल ने बड़े आश्चर्य से कहा—"कौन? सुलतान भाई? वह तो कभी न आयेंगे। और फिर हमें उनकी ज़रूरत ही क्या? हम खुद भी तो घर पहुँच सकते हैं।"

जब स्टेशन आ गया, तो बबूल ने पहिला व्यक्ति जो देखा वह आज़म था। सवारियाँ उतरने की कोशिश कर रही थीं और इधर अम्माँ 'अल्लाह मदद' की रट लगाए हुए थीं। मगर अभी कुलियों ने सामान ठीक से उठाया भी नहीं था कि कोई साहब पतलून की बाईं जेब में हाथ डाले हैट माथे से हटाये धीरे धीरे उधर आ निकले। जैसे घर से सैर करने आये हैं। बबूल को कोई विशेष ध्यान देने की ज़रूरत नहीं थी और न उसने कुछ कहा हो, और अच्छा हुआ कि वह बुर्का पहिने हुए था। नहीं तो सुलतान भाई उसके चेहरे की कैफ़ियत देख कर पता नहीं, क्या कुछ न कहते; क्योंकि यह तो बबूल को स्वीकार करना पड़ता कि उसके चेहरे की रंगत उसके अपने क़ाबू में नहीं थी। साधारण से साधारण बात पर सुर्ख़ी की लहर उसकी गरदन से लेकर उसके बालों तक फैल जाती है।

घर पहुँच कर बबूल को आपा निकहत से गले मिल कर अपूर्व आनन्द हुआ, क्योंकि उसे निकहत का स्वभाव सदा से बहुत पसन्द था। उसने पहिला ही सवाल यह किया—"सुलतान भाई स्टेशन आए थे?" बबूल ने कहा—'जी।" इस पर उन्होंने कमर में हाथ डाल कर ज़ोर से उसे दबाया और साथ ही खिल खिला कर हँस दीं। इतने में सुलतान भाई भी आ गये। इस पर निकहत ने सहानुभूतिपूर्ण लहजे में पूछा—'सुलतान आप थक तो नहीं गये? आप क्यों इतनी तकलीफ़ किया करते हैं? सदक़े किया ऐसे कामों का! मेरे चाँद से भाई का मुँह कुम्हला गया।' और हमदर्दी ज़ाहिर करने के लिये वह अपना हँसना हुई आँखों और होंठों को इस तरह सिकोड़ा कि ताई भी हँस दीं और सुलतान भाई भी हँसने के लिये मजबूर हो गये। और फिर तो वे आपा निकहत के पीछे दौड़े हैं वे आगे आगे और आप पीछे पीछे, कुरसियों और मोढ़ों को गिरा, सामान को तितिर-बितिर कर हँसते हँसाते ऐसा ऊधम मचाया कि सब देखने वाले लोट

पेट हो गये। और ताहू ने कहा—"यह तुम्हारे आने की खुशी है, नहीं तो सुलतान तो कुछ दिन से बहुत चुपचाप सा था।"

दो ही तीन दिन में बतूल को विश्वास हो गया कि उसका ख्याल बिलकुल ठीक था। जहाँ कहीं वह बैठी होती, अगर सुलतान भाई आ जाते तो पहिले तो वह क्षमा याचना करके चले ही जाते और अगर अम्माँ के अनुरोध या आपा निकहत के कहने पर बैठ भी जाते, तो जान-बूझ कर उसीकी उपेक्षा कर के बातें करते रहते। इस प्रकार या खिंचे रहने का एक ही अर्थ था कि उन्हें उससे नफ़रत है। और अगर नफ़रत है, तो हो। आख़िर बतूल ही को वह कब पसन्द थे? बात करनी होती तो उसमें भी एकाध बनावट कूट कूट कर भरी होती। "ओ हो आप तशरीफ़ रखती हैं! अच्छा तो यह आपने काढ़ा है? वल्लाह, हाथ में कितनी सफ़ाई है! आपको तो यह चीज़ें किसी नुमायश में रखनी चाहियें। इसमें सिवाय व्यंग्य के और क्या है? मान लिया कि हाथ पकड़ कर उँगलियों को बड़ी नरमी से दबाते और हाथों की बनावट को अच्छी तरह देखते, पर इससे यह कहाँ सिद्ध होता था कि उन्हें मेरे हाथ पसन्द आ हैं?

एक दिन आपा निकहत ने कहा—"आज शाम को सैर को चलेंगे।" बतूल ने आपा निकहत से पूछा—"सुलतान भाई तो नहीं जायेंगे?" निकहत ने मुस्कराते हुये कहा—"कोई अच्छी-सी साड़ी पहन कर आओ, तैयार तब मैं कर लूँगा। तुम्हारे पास आसमानी रंग की कोई साड़ी है?" बतूल ने कहा—"जी! जार्जट सेट का है तो, और बाहर भी उस पर बहुत ख़ूबसूरत लगा है।" बस आपा निकहत ने अनुरोध किया कि फिर वही पहिनो। शाम हुई तो बतूल नहा धोकर कपड़े पहिनने में लग गई और साड़ी पहन कर तैयार हुई तो आपा निकहत को आवाज़ दी।

जब सुलतान ने इन दोनों को आते देखा, तो होंठों पर मुस्कराहट आ गई, वही व्यंग्यमय मुस्कराहट, वही पुराना अन्दाज़! बतूल अकेली होती तो शायद सामने से हट जाती मगर आपा निकहत साथ थीं। वह पकड़ हुये पास आ गई, और कहा—"सुलतान भाई, चलो, उठो, अब सैर को चलें, शाम हो गई है। आप की शर्त तो मग़रिब के बाद की है न? आप के उठते उठते सूरज डूब जायगा।" पर सुलतान ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल बतूल को अध-खुली आँखों से देखता रहा। निकहत ने कह दिया—"लो, अब काफ़ी देख लिया है, उठो!" मगर शायद सुलतान को यह चोट पसन्द न आई। कहा—"तुम्हें तो काम है, तुम आराम को और छोटे मियाँ को ले जाओ। और फिर इस बार का मैं अभी

ताव खा सकता हूँ।" यह कहा और उठ कर ऊपर अपने कमरे में चले गये।

बतूल ने आपा निकहत की परवाह भी नहीं की। वह कहती ही रहीं कि ठहरो मैं जानती हूँ इनके स्वभाव को, यह इनके नखरे हैं। ऊपर तैयार होने को हो गये होंगे। मगर बतूल ने कुछ न सुना और खिड़की से निकल कर सीधे अपने कमरे में चली गई। इस वक्त उसे जितनी शर्म अपने आप से हुई थी उतनी किसी और को कभी न हुई होगी। उसे इस बात पर गुस्सा था कि आखिर मैंने बनाव सिंगार में इतना समय नष्ट किया ही क्यों? इसलिये कि सुलतान भाई मज़ाक करें? उसे अब उस साड़ी ही से नफ़रत हो गई, जी में आया कि फाड़ कर फेंक दे।

इधर निकहत ऊपर सुलतान को बुलाने गईं और कमरे में दाखिल होते ही कहने लगी— 'सुलतान भाई, यह आप की क्या आदत है कि किसी को सताया, किसी को रुलाया?' उसने कहा—"क्यों?" और वह सचमुच चकित था, क्योंकि वह तो कपड़े बदल रहा था। निकहत ने कहा—"आप मज़ाक करने में बड़े होशियार हैं, मगर आप मज़ाक करते समय आँखें तो नहीं बन्द कर लिया कीजिये। मुझे विश्वास है कि बेचारी बतूल इस समय रो रही होगी।" सुलतान ने अचम्भे से पूछा—"क्यों?" निकहत ने उत्तर दिया—"क्यों क्या? बस तो मैं ऐसा बना बना कर लाई और आप ने इस प्रकार उसका दिल दुखा दिया। मैं उसे रोकती ही रही, क्योंकि मैं आप के स्वभाव से खूब परिचित हूँ, मगर वह क्या जाने आपको? मुझसे हाथ छुड़ा कर भाग गई। अब समझता इसी में है कि मना कर लाओ।"

पहिले तो सुलतान हिचकिचाया, पर आपा निकहत के मजबूर करने पर वह बतूल के कमरे में जा ही पहुँचा, वहाँ देखा कि सचमुच बतूल बिस्तर पर औंधी पड़ी रो रही है। साड़ी भी साधारण सी पहिने हुए है। पाँव की चाप सुनी तो बतूल ने सिर उठाया, सुलतान को देखा, तो पहिले जल्दी से आँसू पोंछे और फिर मुस्कराने की कोशिश करते हुये कहा—"आइये, मेरे सिर में दर्द हो रहा है।" मगर वह बहुत चकित हुई जब सुलतान ने कहा—"मुझसे नाराज़ हो गई हो क्या?" बतूल ने कहा—"आप से?" और फिर उसकी आँखों से आँसू डबडबा आये। इसके बाद बतूल को याद नहीं कि क्या हुआ और कैसे। और मगर जब उसे विश्वास हो गया कि वह स्वप्न नहीं देख रही है, तो उसने अनुभव किया कि उसका सिर सुलतान के चौड़े सीने से लगा हुआ था और सुलतान के बाजू उसकी कमर को थामे हुये थे।

—सैयद फ़ैयाज़ महमूद, एम० ए०